

ॐ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गो जयतः ॐ



सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । | तब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ | किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल ध्वनकर ॥

वर्ष ३

गौराङ्ग ४७१, मास—हृषिकेश-७, वार—चीरोदशायी
शनिवार, ३२ श्रावण, सम्बत् २०१४, १७ अगस्त १९५७

संख्या ३

श्रीश्रीचैतन्याष्टकम्

[श्रीमद्-रूप-गोस्वामि-विरचितम्]

श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः

सदोपास्यः श्रीमान्-धृत-मनुज-कायैः प्रणयितां बहिद्भिर्गीर्वाणैर्गिरिश-परमेष्ठि-प्रभृतिभिः ।
स्वभक्तैः श्रद्धां निज-भजन-मुद्रासुपदिशन् स चैतन्यः किं मे पुनरपि दशोर्यास्यति पदं ॥१॥

सुरेशानां दुर्गं गतिरतिशयेनोपनिषदां मुनीनां सर्वस्वं प्रणत-पटलीनां मधुरिमा ।
विनिर्घासः प्रेम्नो निखिल-पशुपालान्बुज-दशां स चैतन्यः किं मे पुनरपि दशोर्यास्यति पदं ॥२॥

स्वरूपं विभाषो जगदतुलमद्वैत-दयितः प्रपन्न-श्रीवासो जनित-परमानन्द-गरिमा ।
हरिर्दीनोद्धारी गजपति-कृपोत्सेक-तरलः स चैतन्यः किं मे पुनरपि दशोर्यास्यति पदं ॥३॥

रसोद्दामा-कामाबुद्-मधुर-धामोज्ज्वल-तनुयतीनामुक्तं सस्तरणि-कर-विद्योति-वसनः ।
हिरण्यानां लक्ष्मीभरमभिभवद्वाङ्मिक-रुचा स चैतन्यः किं मे पुनरपि दशोर्यास्यति पदं ॥४॥

हरेकृष्णेतुषैः स्फुरित-रसनो नामगणना कृत-ग्रन्थिश्रेणी-सुभग-कटिसूत्रोऽज्वल-करः ।
 विशालाक्षो दीर्घार्गल-युगल-खेलान्धित-भुजः स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥५॥

पयोराशेस्तीरे स्फुरदुपवनाली-कलनया मुहुवृन्दाख्य-स्मरण-जनित-प्रेम-विषयः ।
 क्वचित् कृष्णावृत्ति-प्रचल-रसनो भक्ति-रसिकः स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदं ॥६॥

रथारुदस्यारादधिपदधि नीलाचल-पते-रदभ्र-प्रेमोर्मि-स्फुरित-नटनोल्लास-विषयः ।
 सहर्षं गायद्भिः परिवृत-तनुवैष्णव-जनैः स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदं ॥७॥

भुवं सिञ्जन्नभ्र-श्रुतिभिरमितः सान्द्र-पुलकैः परीताङ्गो नीप-स्तवक नव-किञ्जल्क-जयिभिः ।
 घन-स्वेद-स्तोम-स्तिमित-तनुशकीर्त्तन-सुखो स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदं ॥८॥

अधीते गौराङ्ग-स्मरण-पदवी-मङ्गलतरं कृती यो विश्रम्भ-स्फुरदमलधीरष्टकमिदं ।
 परानन्दे सद्यस्तदमल-पदाम्भोज-युगले परिस्फारा तस्य स्फुरतु नितरां प्रेम-लहरी ॥९॥

अनुवाद—

ब्रह्मा और महेशादि देवतावृन्द मनुष्योंका शरीर धारण कर पार्षदके रूपमें जिसकी उपासना बड़े प्रेमके साथ निरन्तर किया करते थे तथा जो स्वरूप और दामोदर आदि अपने प्रिय भक्तोंको निज भजनकी विशुद्ध प्रणालीका उपदेश किया करते थे, वे श्रीचैतन्यदेव क्या पुनः मेरे नयन-पथके पथिक हो सकेंगे ? ॥१॥

जो इन्द्र आदि देवताओंको अभय प्रदान करनेवाले हैं, जो निखिल उपनिषदोंकी एक मात्र गति अर्थात् उनके प्रतिपाद्य विषय हैं, जो मुनियोंके लौकिक और पारलौकिक यथा-सर्वस्व हैं, जो भक्तोंके लिये साक्षात् माधुर्यस्वरूप हैं एवं जो गोप-रमणियोंके प्रेमके सार-स्वरूप हैं, उन श्रीचैतन्यदेवको क्या मैं पुनः देख सकूँगा ? ॥२॥

जिन्होंने इस जगत्में श्रीदामोदर स्वरूप नामक अपने अतुलनीय पार्षद भक्तको अपनी कृपारूपी अमृत-धारासे सींच-सींच कर पाला-पोषा है, जो अद्वैताचार्यके अतिशय प्रिय है, जो श्रीवास पण्डितके आश्रय हैं, जिन्होंने परमानन्द पुरीका गौरव बढ़ाया है, जिन्होंने इस जगत्में मायाका प्रभाव दूर किया है, विविध पापोंसे दग्ध हो रहे दीन-हीन प्राणियोंका जिन्होंने उद्धार किया है तथा जो उत्कल नरेश श्रीप्रतापरुद्रके प्रति करुणारूपी अमृतकी वर्षा करनेके लिये सर्वदा उतावले रहते थे, वे श्रीचैतन्यदेव क्या पुनः मेरे दृष्टिगोचर होंगे ? ॥३॥

जो परम मधुर भक्ति-रसके आस्वादनमें उन्मत्त हैं, जिनके अंगोंकी छवि कोटि-कोटि कामदेवके समान मनोहर और अत्यन्त उज्ज्वल है, जो संन्यासियोंके शिरोमणि हैं, जिनके वस्त्र बाल-सूर्यकी किरणोंके समान अरुण हैं तथा जिनकी अङ्ग-कान्ति सुवर्ण-राशिकी अति मनोहर कान्तिका भी पराभव करनेवाली हैं, वे चैतन्यदेव क्या पुनः मेरे नयन-पथमें विचरण करेंगे ? ॥४॥

जिनकी रसना पर 'हरे कृष्ण' नाम-महामन्त्र जोर-जोरसे कीर्त्तित हो रहे हैं, और उस नामकी संख्या गिननेके लिये गाँठोंवाला कटि-सूत्र जिनके बाँये हाथमें सुशोभित है, जिनके विशालनेत्र कानों तक विस्तृत हैं, जिनकी युगल भुजाएँ अजानुलम्बित हैं, उन श्रीचैतन्यदेवको क्या मैं पुनः देख सकूँगा ? ॥५॥

समुद्र-तट पर उपवनोंको देख कर वृन्दावनकी बार-बार स्मृति होनेके कारण जो प्रेममें विह्वल हो जाया करते थे, और कहीं कहीं तो कृष्ण-नाम रटते-रटते जिनकी रसना बड़ी ही चंचल हो उठती थी, वे भक्ति-रसके रसिक श्रीचैतन्यदेव क्या पुनः मेरे नयन-पथमें उदित होंगे ? ॥ ६ ॥

रथके ऊपर विराजमान श्रीजगन्नाथदेवके सामने मार्गपर जब वैष्णवजन आनन्दमें मग्न होकर बड़े प्रेमसे नाम-संकीर्तन करने लगते, उस समय महाप्रेममें मत्त होकर जो नृत्य करते-करते अत्यन्त अधीर हो पड़ते, वे श्रीचैतन्यदेव क्या पुनः मेरे नयनगोचर होंगे ? ॥ ७ ॥

संकीर्तनानन्दमें निमग्न होनेपर जिनकी अश्रु-धारासे धरती सिक्त हो जाया करती, जिनका समस्त अङ्ग कदम्ब-केशर-विजयी पुलकसमूहसे रोमाञ्चित हो उठता एवं जिनका समस्त शरीर पसीनेसे सदा सरावोर रहता, वे चैतन्यदेव क्या पुनः मेरे नयनगोचर हो सकेंगे ? ॥ ८ ॥

जो विद्वान् व्यक्ति पवित्र हृदयसे भद्रासहित श्रीचैतन्यदेवके स्मरणमूलक इस कल्याणप्रद अष्टकका पाठ करते हैं, उनका हृदय श्रीचैतन्य महाप्रभुके परमानन्दमय सुविमल चरणकमलोंके प्रति प्रेमकी लहरोंसे परिपूर्ण हो उठे ॥ ६ ॥

श्रीगुरुका स्वरूप

हरिचरण बाबूका पत्र

नोयाखली विजयनगरसे परमभागवत श्रीयुत-हरिचरणपालने श्रीप्रभुपादको लिखा है—'श्रीश्रीगुरु-तत्त्वके सम्बन्धमें यहाँ पर कुछ दिन पहले कुछ तर्क-वितर्क उठे थे। मैंने उन तर्कोंकी मीमांसाके लिए आपके श्रीचरणोंमें निवेदन किया था। उसके उत्तरमें आपने हमें 'श्रीचैतन्यचरितामृत' का आदि खण्ड अवलोकन करनेका आदेश दिया था। किन्तु उक्त ग्रन्थसे मेरी आशा-आकांक्षा तृप्त न हो सकी। इसलिए आज पुनः यह दीन-हीन भजन-विहीन, नितान्त मूर्ख दास बड़ी विपत्तिमें पड़कर आपके चरणोंका आश्रय लिया है। आप बड़े ही दयालु अनाथोंके नाथ और दीन-हीन पतितोंके बन्धु हैं। यदि आप दया कर इस नराधम और घोर पापिष्ठका उद्धार करना चाहते हैं, तो आप अपने अमूल्य कार्यक्रमसे कुछ समय निकाल कर निम्नलिखित प्रश्नका विस्तारित उत्तर प्रदान करनेकी कृपा करेंगे। श्रीश्रीभक्ति-विनोद ठाकुरके अप्रकटके पश्चात् हमलोगोंने आपके

उपदेशों, आदेशों तथा विवादास्पद समस्याओंकी मीमांसाओंको सिर भुकाकर मानलेनेका निश्चय कर लिया है। अतएव हम आपसे इस प्रश्नकी विशद मीमांसा जाननेके लिए बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप अवश्य कृपा करेंगे।

संशय

हमारे देशमें गुरु-तत्त्वके सम्बन्धमें दो प्रकारकी विचार-धाराएँ चलती हैं। इन्हें अवलोकन कर हमारे जैसे अज्ञ व्यक्ति बड़ी ही उलझनमें फँस जाते हैं। इनमें कौनसा मार्ग सत्य है, सुतरां किस मार्गका अवलम्बन करना उचित है—समझ नहीं पड़ता। धर्म-ग्रन्थके व्याख्याकारोंके भाव भी समझमें नहीं आते। कोई एक प्रकारसे व्याख्या करता है, तो कोई दूसरा उसीकी व्याख्या अन्य प्रकारसे करता है। अब हमलोग किधर जाँय ? किनकी बातोंका विश्वास करें ?

कोई कहता है—श्रीगुरुदेव साक्षात् भगवान् हैं,

अतएव एकमात्र उनका भजन करनेसे ही सारी मनोकामनाएँ सिद्ध होंगी। दूसरा कहता है—गुरुदेव को साक्षात् भगवान् माननेसे अपराध होता है। उनको भगवत-पार्षद अथवा प्रियतम भक्त मानकर उनका भजन करना ही विधि है।

उपर्युक्त दोनों पक्षोंके लोग अपने-अपने मतोंकी पुष्टिके लिए विभिन्न शास्त्रोंके प्रमाण पेश करते हैं। अबतक मैं व्यक्तिगतरूपसे अन्तिम मार्गका ही अवलम्बन करता आ रहा हूँ। किन्तु विपक्षके प्रति-वादीको सम्पूर्ण रूपमें खण्डन करनेमें समर्थ नहीं हो रहा हूँ।

ऐसी अवस्थामें आपके श्रीचरणोंमें कातर-प्रार्थना है कि आप कृपाकर शास्त्रीय प्रमाणोंके साथ-साथ

श्रीलप्रभुपादका सद्त्तर

शास्त्र तीन भागोंमें विभक्त है। कर्म, ज्ञान और भक्ति। इन भिन्न-भिन्न त्रिविध दृष्टिकोणोंसे विचार करने पर शास्त्रोंका अर्थ भिन्न-भिन्न रूपमें गृहीत होता है। जो एक अद्वितीय ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य जीवादिका अधिष्ठान या अनुभूति स्वीकार नहीं करते, उनके मतमें सब कुछ एक ब्रह्म ही है, किसी भी द्वितीय वस्तुकी सत्ता स्वीकृत नहीं है। ये निर्भेद ब्रह्मज्ञानीजन प्रत्येक वस्तुको ही ब्रह्म मानते हैं। ये लोग गुरुदेवको ब्रह्मसे पृथक् नहीं मानते तथा उपासना या भक्तिमार्गको स्वीकार नहीं करते। किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने भक्तिमार्गको ही शास्त्रोंका प्रकृत और चरम उद्देश्य बतलाया है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मतानुसार तत्त्व—अचि-न्यद्वैताद्वैत है। अर्थात् सारी वस्तुएँ ब्रह्मसे भिन्न होकर भी ब्रह्ममें ही अवस्थित हैं। ब्रह्मके अतिरिक्त द्वितीय वस्तु नहीं है, किन्तु शक्तिगत वैचिध्यके कारण एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न शक्तियोंके प्रकाशानुसार परस्पर भिन्न-भिन्न धर्म-विशिष्ट हैं। तत्त्वके सम्बन्ध में मायावादियोंकी धारणाको निर्विशेष ज्ञान कहते हैं और श्रीचैतन्यदेव द्वारा प्रवर्तित तत्त्व ज्ञानको—सविशेष तत्त्व-ज्ञान कहते हैं। श्रीकृष्णचैतन्य एक वस्तु होकर भी छः भिन्न-भिन्न तत्त्वोंमें प्रकाशित

अपना विशुद्ध-विचार पत्र द्वारा भेजेंगे। शास्त्रीय प्रमाणोंकी आवश्यकता—केवल विरुद्धवादियोंके वितर्कोंका उत्तर देनेके लिए है। 'श्रीचैतन्यचरितामृत' के आधार पर विरुद्धवादियोंके वितर्कोंका खण्डन कर उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर पाता।

इसलिए इस चार कृपया कोई ग्रन्थ देखनेका आदेश न करेंगे। बल्कि स्वयं विस्तारसे उक्त शंकाका समाधान कर देनेसे बहुतसे मूर्खों और संदिग्ध व्यक्तियों अत्यन्त कल्याण होगा।

यहाँ बहुतसे व्यक्ति हम पत्रके उत्तरकी बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे हैं। अतएव कृपा करनेमें देर न हो—यही हमारी पुनः पुनः प्रार्थना है।

हैं—(१) गुरु तत्त्व, (२) श्रीवास आदि भक्त-तत्त्व (३) अंशावतार अद्वैत-तत्त्व, (४) स्वरूप-प्रकाश नित्यानन्द-तत्त्व, (५) गदाधर आदि शक्ति-तत्त्व, (६) स्वयं भगवत्तत्त्व श्रीकृष्ण चैतन्य। ये छःहो तत्त्व एकमात्र श्रीकृष्ण चैतन्य ही हैं। ऐसी अवस्था में गुरु-तत्त्व भी श्रीकृष्ण चैतन्य है। अचिन्त्य-भेदाभेद स्वीकृत होनेपर ये छःहो तत्त्व भगवान् ही हैं, किन्तु परस्पर भिन्न हैं। श्रीवासादि भक्त, श्रीगदाधरादि शक्ति, अद्वैत अंशावतार, नित्यानन्द प्रकाश-स्वरूप और गुरुदेव—ये पाँचो तत्त्व श्रीकृष्णचैतन्यसे अभेद होनेपर भी नित्य पृथक् हैं तथा उनके सेवक हैं।

श्रीगुरुदेव भगवान्के प्रकाश और प्रियतम भक्त हैं, अतएव भगवान्से भी बड़े हैं।

श्रीचैतन्यदेवके दास होनेपर भी श्रीगुरुदेव भगवान्के प्रकाश स्वरूप हैं, भगवान् ही गुरुदेव हैं। गुरुदेव साक्षात्-प्रकाश होनेपर भी कृष्ण चैतन्यदेवके प्रियतम दास हैं। गुरुदेव मरणशील या अनित्य नहीं हैं। वे कृष्णके सेवकरूपमें कृष्णसे भिन्न होनेपर भी कृष्णसे अभिन्न वस्तु हैं। वे भक्त हैं, अतएव कृष्णसे भी बड़े हैं। उनको कृष्णके बराबर धारणा करने पर भी उनकी लघुता ही प्रकाशित होती है।

'कृष्ण साम्ये नहे तौर माधुर्य-आस्वादन ।'
 कृष्णेर समता हहते बड़ भक्त पद ।'
 'भक्त-अभिमान मूल श्रीवल्लरामे ।
 सेई भावे अनुगत तौर अंशगणे
 नाना-भक्तभावे करेन स्वमाधुर्य पान ।'
 'आपनाके करेन तौर दास अभिमान ॥'
 'सेई अभिमान सुखे आपना पाशरे ॥'
 'कृष्णदास अभिमाने ये आनन्दसिन्धु ।
 कोटी ब्रह्मानन्द नहे तार एक विन्दु ॥'
 'मुह ये चैतन्यदास आर नित्यानन्द ।
 दास भाव सम नहे अन्यत्र आनन्द ॥'
 'सेई कृष्ण अवतीर्य—चैतन्य ईश्वर ।
 अतएव आर सब,—तौहार किङ्कर ॥'
 (श्रीचैतन्यचरितामृत)

भावार्थ यह कि भक्तका पद कृष्णकी समतासे भी ऊँचा है। बल्लराम भी अपनेमें दास्य भाव रखते हैं। कृष्णदास्यकी भावनामें आनन्दका एक ऐसा सागर समझता रहता है कि ब्रह्मानन्द जिसकी तुलनामें एक विन्दुके समान भी नहीं है। कृष्ण अथवा श्रीचैतन्यदेव ही एकमात्र भगवान् हैं और उनके अतिरिक्त और सभी उनके किङ्कर हैं।

उपरोक्त पद्य-समूह श्रीकृष्ण और गुरुदेवके सम्बन्धमें भी लागू हैं।

गुरुतत्त्वके सम्बन्धमें जीवगोस्वामीके विचार

भक्त, कृष्ण और गुरुदेव एकमात्र अभिन्न होनेसे भक्तिमार्गका अस्तित्व ही लोप हो जाता है। जो लोग इन तीनोंको केवल अभिन्न ही मानने हैं, उन्हें निर्दिशेषवादी कहते हैं। चारों-वैष्णव-सम्प्रदायोंमें गुरुदेवको भरणशील नहीं, बल्कि नित्य चिन्मय वस्तु माना है,—उनमें भगवद् बुद्धि रखने पर भी उनको भगवान्का सेवक भक्त माना है। कर्मी, ज्ञानी और भक्तजन सभीलोग गुरुदेवमें भगवद् बुद्धि रखते हैं। कोई भी उनमें प्राकृत-बुद्धिका आरोप नहीं करते। किन्तु शुद्धभक्तजन गुरुमें भगवद् बुद्धि रखने पर भी उनको कृष्णका प्रियतम सेवक ही मानते हैं। श्रीरूपानुग आचार्यवर

श्रीजीव गोस्वामीने अजात रुचिवाले वैधमार्गीय भक्तके कल्याणार्थ भक्ति-सन्दर्भमें लिखा है—“शुद्ध-भक्ताः श्रीगुरोः श्रीशिवस्य च भगवता सह अभेद दृष्टिं तत् प्रियतमत्वेनैव मन्यते ।” अर्थात् शुद्ध-भक्त-जन श्रीगुरुदेव और श्रीशिवको भगवान्से अति प्रियतमत्वके कारण ही अभिन्न मानते हैं। प्रमाण-स्वरूप उन्होंने श्रीमद्भागवतका निम्नलिखित श्लोक (३० । २६ । ८) उद्धृत किया है—

वयन्तु साषाद्भगवन् भवस्य,
 प्रियस्य सख्युः षणसङ्गमेन ।
 सुदुरिचकित्स्यस्य भवस्य मृत्यो-
 भिषक्तमं त्वाद्यगतिं गताः स्म ॥

श्रीजीव गोस्वामीकी टीका—

तव यः प्रियः सखा तस्य भवस्य । अत्यन्त-मचिकित्स्यस्य भवस्य जन्मनो मृत्योश्च भिषक्तमं सद्द्वैद्यं त्वां गतिं प्राप्ता इत्येषा । श्रीशिवो ह्येषां वक्तृणां गुरुः । श्रीप्रचेतसः श्रीमदष्टभुजं पुरुषम् ॥

—भक्तिसन्दर्भ—२१३

प्राचीनवर्द्धिके पुत्र प्रचेतागण श्रीशिवजीके शिष्य थे। प्रचेताओंने रुद्रगीत द्वारा भगवान् अष्ट-भुजका दर्शन प्राप्त कर उनका स्तव किया था। उसी स्तवसे उपर्युक्त श्लोककी अवतारणा की गयी है। प्रचेताओंने कहा—“भगवन् ! आपके प्रिय सखा श्रीशङ्करजीके ऋणभरके संगके प्रभावसे ही आज हमें आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ है। आप जन्म-मरण रूप दुःसाध्य रोगके श्रेष्ठतम वैद्य हैं। अतः अब हमने आपका ही आश्रय लिया है।” उक्त श्लोकमें प्रचेताओंने अपने गुरुदेव शिवको कृष्णका प्रिय सखा माना है।

श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके विचार ।

आचार्यवर श्रीरघुनाथदास गोस्वामी श्रीरूपा-नुग भक्तोंके रागानुगा मार्गीय प्रधान आचार्य हैं। उनकी शिक्षा यह है—

न धर्म नाधर्मं श्रुतिगणनिरुक्तं किल कुरु
 वजे राधाकृष्ण प्रभुर-परिचर्यामिह वतु ।

शचीसूनुं नंदीश्वर-पतिसुतस्वे गुरुवरं
मुकन्दप्रोष्ठवे स्मर परमजघ्नं ननु मनः ॥

(मनः शिवा-२)

--हे मन ! तुम वेदोक्त धर्म-समूह अथवा वेद-निषिद्ध अधर्मादि कुछ भी न करो, बल्कि ब्रजमें राधाकृष्णकी प्रचुर सेवा करो, शचीनन्दन श्रीगौरहरिको ब्रजेन्द्रनन्दन जानो तथा श्रीगुरुदेवको कृष्णका अतिशय प्रिय जानकर उनका सर्वदा स्मरण करो ।

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीका सिद्धांत
श्रीपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामीने लिखा है—

यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास ।

तथापि जानिये आमि तौहार प्रकाश ॥

(चैतन्यचरितामृत १।१।४४)

अर्थात् --मेरे गुरुदेव यद्यपि श्रीचैतन्यदेवके दास हैं; तथापि मैं उनको श्रीचैतन्यदेवका प्रकाश ही जानता हूँ ।

यहाँ पर श्रीगुरुदेव श्रीचैतन्यदेव नहीं होनेपर भी श्रीचैतन्यदेवके प्रकाश हैं । शुद्ध भक्तजगत्के गुरु और श्रीचैतन्यदेवके प्रकाश हैं । नित्यानन्द प्रभु विष्णु-तत्त्वके मूलाधार होनेपर भी दस प्रकारके शरीर धारण कर श्रीकृष्णकी निरन्तर सेवा करते हैं ।

श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशयका सिद्धांत

श्रीपाद नरोत्तम ठाकुर अपनी रचित 'प्रार्थना' में लिखते हैं—

“सुवर्षेर भारी करि, राधाकुण्डे जल पुरि,
दोहाकार अग्रेते राखिव ।

गुरु रूपा सखी वामे, त्रिभङ्ग भङ्गिम ठामे,
चामरेर वातास करिव ॥

--आह ! वह दिन कब होगा, जब मैं सोनेकी झारियोंमें श्रीराधाकुण्डका सुस्निग्ध और शीतल जल भर भर कर अपने प्रियतम श्रीश्रीराधाकृष्णके सामने रखा करूँगी तथा वहाँ गुरुरूपा सखीकी बाँधी और त्रिभङ्ग भङ्गीसे खड़ी होकर धीरे-धीरे चामर डोलाया करूँगी ?

और भी अन्यत्र कहते हैं—

हेन नितार्ई बिने भाई, राधाकृष्ण पाहते नाई,
दृकरि धर नितार्ई पाय ।

से सम्बन्ध नाहिं वार, वृथा जन्म गेल तार,
सेई पशु बड दुराचार ॥

—इस प्रकार इन नित्यानन्द प्रभुकी कृपाके बिना श्रीश्री राधाकृष्णकी किसी भी हालत में प्राप्ति नहीं हो सकती। अतएव यदि श्रीश्रीराधाकृष्णको प्राप्त करनेकी नितान्त ही अभिलाषा है, तो श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणकमलोंको दृढ़तापूर्वक पकड़ो। जिनका करुणावहणालय श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है, उनका जन्म वृथा ही चला गया। वे एक अत्यन्त दुराचारी और पशु हैं।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी शिवा

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर लिखते हैं—

साक्षादरिखेन समस्त शास्त्रै—

रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः ।

किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य

वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥

(गुणष्टक -७)

—निखिल शास्त्रोंने जिनका साक्षात् हरिके अभिन्न विग्रहरूपसे गान किया है एवं साधुजन भी जिनकी उसी प्रकारसे भावना करते हैं, तथापि जो प्रभु भगवान्के एकान्त प्रिय हैं, उन्हीं (भगवान्के अचिन्त्यभेदाभेद-प्रकाश-विग्रह) श्रीगुरुदेवके चरण-कमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ ।

श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामीकी शिवा

श्रीगौर-पार्षद बक्रेश्वर पंडितके शिष्य श्रीगोपाल-गुरु थे। उनके शिष्य श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामीने शुद्ध भक्तोंद्वारा परमादृत अपने पद्धति-ग्रन्थमें लिखा है—
“श्रीमहाप्रभुशेष-निर्माल्येन श्रीवासादिपार्षदान् पूजयेत्
तथैव तद्भक्तान् श्रीगुर्वादीन् भक्तितः ।” अर्थात्
भगवान् श्रीगौरचन्द्रके निर्माल्य द्वारा श्रीवास आदि
भक्तोंकी पूजा करनी चाहिए। इसी प्रकार गौर-
प्रसाद द्वारा श्रीगुरुदेव आदि भक्त-जनोकी भी
भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए।

श्रीभक्ति विनोद ठाकुरने "हरिनाम चिन्ता-मणि" ग्रन्थमें लिखा है—

गुरुके सामान्य जीवन जिनके कभु ।

गुरु, कृष्ण-शक्ति, कृष्ण-प्रेम, नित्यप्रभु ॥

अर्थात् गुरुदेव साधारण जीव नहीं हैं । वे कृष्णकी शक्ति हैं—कृष्णके परम प्रियतम हैं तथा जीवों के नित्य आराध्य देव हैं । गुरुदेवको कृष्ण समझना मायावाद है । यह शुद्ध वैष्णव-मत नहीं है । साधक-भक्त इस विषयमें सावधान रहेंगे । साधन-क्रियामें मायावाद रूप विष थोड़ासा भी प्रवेश करने पर वह समस्त साधनको ही दूषित कर डालता है ।

श्रील प्रभुपादके निजस्व उपदेश

इस विषयमें १३१० वंगान्दमें प्रकाशित एक लेख यहाँ पर उद्धृत किया जा रहा है—

श्रीधाम वृन्दावनसे प्रकाशित "श्रीवैष्णव सन्दर्भ" नामक मासिक पत्रकी द्वितीय संख्या हमें मिली है । इस पत्रके सम्बन्धमें एक जगह विज्ञापनमें लिखा है—'पूर्व-पूर्व अचार्यों द्वारा अप्रकाशित अभिनव मासिक सन्दर्भ ।' मैं उक्त पत्रिकाके अभिनव मतकी आलोचना कर रहा हूँ । कतिपय शुद्ध वैष्णवों ने अत्यन्त व्यथित होकर मुझे 'गुरुनिष्ठा' प्रबन्ध को पढ़कर सुनाया है । वास्तवमें हमारे पूर्वाचार्य गोस्वामीगण इन अर्वाचीन सिद्धान्तोंको जानते नहीं थे । उक्त लेखकी चरम मीमांसा यह है—'साक्षात् भगवान् श्रीचैतन्यदेवने हमें क्या शिक्षा दी है ? उनकी शिक्षा यह है कि गुरुदेव ही ईश्वर हैं, परम स्वतन्त्र वस्तु हैं ।' किन्तु कार्याध्यक्ष महाशयकी आश्वास वाणीको निष्फल होते देखकर हम बड़े ही दुःखित हुए हैं । भक्ति-विरोधी मंत्रजीवियोंके बागा-इम्बरसे अनेकों साधकोंका परमार्थ नष्ट हो जाता है; वे वंचित होते हैं—यह सोचकर हमें खेद होता है—

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने सिखलाया है—

किवा विप्र किवा न्यासी शूद्र केने नय

येई कृष्ण तख वेत्ता सेई गुरु हय ॥

(चैतन्यचरितामृत)

अतएव वस्तुतः ईश्वर न होनेपर भी ईश्वरके दासगण कृष्णतत्त्वके पारंगत होनेपर गुरु हैं—यह जाना गया ।

पारमार्थिक गुरु तीन प्रकारके हैं

शास्त्रोंमें गुरु तीन प्रकारके बतलाए गए हैं। श्रवण-गुरु, भजन या शिक्षागुरु और मंत्रदाता गुरु । वर्त्म-प्रदर्शक गुरु या श्रवणगुरु बहुधा भजन शिक्षा-गुरु ही होते हैं । शिक्षागुरु अनेक होनेपर भी आगम मंत्रशास्त्रमें पारंगत गुरुके निकट ही मंत्र प्रहण करना चाहिये । मंत्र गुरु यदि अवैष्णव हुए, तब उन्हें परित्याग कर भगवद्भक्त गुरुका आश्रय करना चाहिये । श्रीगुरुदेवके प्रति अपने इष्टदेव से भी बढ़कर भक्ति रखनी चाहिये । तत्त्ववादीगण मायावादियोंकी तरह चिद्बस्तुको निर्विशेष नहीं मानते । श्रीजीव गोस्वामी भक्तिसन्दर्भमें लिखते हैं—

"तस्मिंश्चिन्मात्रेऽपि वस्तुनि या विशेषाः स्वरूपभूतशक्तिसिद्धा भगवत्तादिरूपा वर्त्तन्ते तांस्ते विवेक्तुं न क्षमन्ते यथा रजनी खण्डिनि ज्योतिषि ज्योतिर्मात्रत्वेपि ये मण्डलान्तर्वहिश्व दिव्यविमानादि परस्परपृथग् भूतरश्मिपरमाणुरूपा विशेषास्तां र्चर्मचक्षुषी न क्षमन्ते इत्यन्वयस्तद्वत् । पूर्ववच्च यदि महत् कृपा-विशेषेण दिव्यदृष्टिता भवति तदा विशेषोपलब्धिश्च भवेत् ।" मायावादके दृष्टिकोणसे दर्शन करने पर श्रीगुरुदेवको ईश्वरके रूपमें कल्पना करनी पड़ती है । किन्तु वास्तवमें (गुरुकी कृपासे) महत्तोंकी कृपासे दिव्यज्ञान प्राप्त होनेपर ईश्वर-वस्तुमें एक विशेष धर्मकी उपलब्धि होती है । तब वे भगवान्से अभिन्न गुरुदेवको भगवान्से नित्य भिन्न दर्शन कर "वन्दे गुरुन" द्वारा उनकी वन्दना कर उनसे श्रीकृष्णचैतन्यकी भक्ति प्रार्थना करते हैं ।

कृष्ण गुरुद्वय भक्तावतार प्रकाश ।

शक्ति--एई द्वय रूपे करेन विलास ॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत आदि १ । ३२)

इस महावाक्यसे यह विदित होता है कि शक्तिगत भेद नित्य है । इस भेदको भाषाके विकाश

कौशलसे ढका नहीं जा सकता। कविराज गोस्वामीने गुरु तत्त्वको परिस्पष्ट करनेके लिए लिखा है—

यद्यपि अमार गुरु—चैतन्येव दास ।

तथापि जानिये आमि तौहार प्रकाश ॥

(चैतन्यचरितामृत)

अतः अतिशय मूढ़ और निपुण दोनों प्रकारके पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि वास्तवमें गुरु ईश्वर नहीं—बल्कि भगवदास हैं। उनके प्रति प्राकृत व्यवहार करनेसे कृष्णकी कृपा कदापि नहीं पायी जा सकती। श्रीगुरुदेवके प्रति सर्वदा चिन्मय-बुद्धि रखनी चाहिए।

असह्य गुरुके परित्यागकी विधि

किसी व्यक्तिको सद्गुरु जानकर उससे मंत्रलेनेके पश्चात् यदि पीछेसे यह पता लगे कि गुरु दुर्नैतिक, अर्थलोभी, भुक्तिभुक्तिकामी, स्त्रीसंगी, कृष्णाभक्त, कपटी, हिंसापरायण, लाभपूजाप्रतिष्ठाकामी, मंत्र-व्यवसायी तथा अवैष्णव हैं, तो ऐसे अयोग्य और कपटी गुरुका सम्पूर्णरूपसे परित्याग कर देना चाहिए तथा कृष्ण तत्त्वविद् अमर्त्य अप्राकृत गुरुका आश्रय करना चाहिए। क्योंकि उपरोक्त प्रकारके कपटी गुरुके आश्रयसे कृष्णभक्ति कदापि लाभ नहीं हो सकती। चतुर्दश भुवनके परम वंदनीय, श्रीभगवान्के श्रेष्ठतम पार्षद आचार्य श्रीरघुनाथदास गोस्वामी श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभुजीके आश्रित वर्तमान और भावी उन्नततम वैष्णवोंके भी परम आराध्य हैं। उन्होंने स्वरूप दामोदर और श्रीरूप गोस्वामीके आनुगत्यमें अपने रचित 'मनःशिक्षा' नामक पद्यमें श्रीगुरुदेवका

तत्त्व अति प्राञ्जल रूपमें व्यक्त किया है। उनके सिद्धान्तके विरुद्ध किसी भी काल्पनिक कुसिद्धान्तकी गगन-भेदी आवाज कोई सुफल उत्पन्न नहीं कर सकती। उन्होंने बतलाया है कि श्रीगुरुदेव भगवान् मुकुन्दके प्रेष्ठ-परम प्रिय हैं—मुकुन्द नहीं हैं।

आचार्यवर्गोंके मतोंकी पुनरावृत्ति

श्रीनरोत्तम ठाकुरने अपनी प्रार्थनामें "निताह पद कमल" आदि गीतों द्वारा गुरुतत्त्वके सम्बन्धमें विशेष शिक्षा दी है। उससे प्रत्येक तार्त्विक वैष्णव यह समझ सकता है कि गुरुदेव सन्धिनी, ह्यारिनी और सन्धिवत् शक्तियोंकी जड़में नित्य विराजमान है। केवल सन्धिवत् शक्तिको ही उनके सिर पर थोपनेसे मायावाद अथवा सहजिया मत हो पड़ता है। यतिन्द्र श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामीने विशुद्ध वैष्णवोंके व्यवहारों को अपनी पद्धति-ग्रन्थमें निरूपण किया है। श्रीगौडीय वैष्णव-समाजमें इस ग्रन्थका बड़ा आदर है। हम उससे निम्नलिखित अंश उद्धृत करते हैं—

"श्रीमहाप्रभु-शेष-निर्मात्यैव श्रीवासुदिपार्षदान् पूजयेत् । तथैव तद्भक्तान् श्रीगुर्वादीन् भक्तितः ।" इस पर विचार करनेसे पता चलता है कि स्वार्थान्ध होकर श्रीगुरुके सम्बन्धमें किसी नये मतका प्रचार करनेसे केवल एक उपसम्प्रदायकी ही भित्तिमात्र स्थापित होती है। ऐसी-ऐसी उपसम्प्रदायोंका अभाव नहीं है। अंतमें हम यह प्रार्थना करते हैं कि श्रीगुरुदेव कृपाकर उपरोक्त स्वार्थान्ध व्यक्तियोंको अपना स्वरूप प्रदर्शन करें।

--ॐवैष्णवपाद श्रीश्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती

श्रील प्रभुपादकी उपदेशावली

यदि सचमुच कल्याण चाहते हो तो असंख्य जनमतका परित्याग करके भी श्रौत-बाणीका श्रवण करो। जीवोंकी विपरीत रुचिको बदलना ही सर्वश्रेष्ठ दयालुताका परिचय है। महामायाके दुर्गसे यदि एक भी जीवका उद्धार कर सको तो उससे जो उपकार होगा वह अनन्तकोटि अस्पताल निर्माणके उपकारकी अपेक्षा अनन्तकोटि गुना अधिक श्रेष्ठ होगा।

निश्चय

निश्चयात्मा और संशयात्मा

'श्रीउपदेशामृत' में श्रीरूप गोस्वामीने भक्ति-साधकोंके लिए निश्चयात्मा होनेके लिये उपदेश दिया है। जब तक निश्चयता नहीं होती, तबतक मनुष्य संशयात्मा रहता है। संशयात्माका कभी भी कल्याण नहीं होता। जहाँ संशय वर्तमान है, वहाँ भक्ति के प्रति भ्रद्धा कैसे उत्पन्न हो सकती है? गीतामें कहते हैं—

अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥

सम्बन्धज्ञानसे रहित और अभ्रद्दालु संशयात्मा मनुष्य नष्ट हो जाता है। उस संशयात्माके लिए न लोक है और न परलोक ही। उसे कहीं भी सुख-शान्ति प्राप्ति नहीं हो सकती। जिनको 'भ्रद्धा हो गयी है, वे पहले ही निःसंशय हो चुके हैं, क्योंकि 'भ्रद्धा'—शब्दका अर्थ ही है—टढ़ विश्वास। जब तक चित्तमें संशय है, तबतक टढ़ विश्वास कभी पैदा नहीं हो सकता। अतएव भ्रद्दालु जीव सर्वदा संशय-रहित होता है।

दशमूल-तत्त्व

श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने वैष्णव मात्रको 'सम्बन्ध', 'अभिधेय' और 'प्रयोजन'—इन त्रिविध तत्त्वोंको जाननेकी आज्ञा दी है। इन त्रिविध तत्त्वोंमें दस मूल विषय हैं; यथा—प्रथम मूल है—वेदशास्त्र ही एकमात्र प्रमाण है। प्रयोजनतत्त्व निरूपण करनेके पहले प्रमाण जानना आवश्यक है। प्रमेय नव हैं। इन समस्त प्रमेयोंके निर्णयमें भी प्रमाणकी आवश्यकता अनिवार्य है। भिन्न-भिन्न शास्त्रोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं। कोई प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान आदिको प्रमाण मानते हैं, तो कोई अन्यान्य विषयोंको भी प्रमाणके अन्तर्गत मानते हैं। श्रीमन्महा-

प्रभु द्वारा प्रदर्शित वैष्णव-शास्त्रोंमें आम्नायसे प्राप्त स्वतःसिद्ध प्रमाणको मुख्य-प्रमाण और अन्यान्य प्रमाणसमूहको गौण-प्रमाण बतलाया गया है। मुख्य प्रमाण ही ग्रहण करने योग्य हैं।

अचिन्त्य भाव और चिन्त्य भाव

जगत्में जितने प्रकारके भाव हैं, उन्हें दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—चिन्त्य भाव और अचिन्त्य भाव। प्राकृत भाव—अर्थात् जो भाव-समूह मानवोंके चिन्ता-मार्ग पर स्वयं उदित होते हैं, उन्हें 'चिन्त्य-भाव' कहते हैं। अप्राकृत भावोंको—जो साधारण मानवोंके ज्ञान-शक्तिसे परे होते हैं—'अचिन्त्य भाव' कहते हैं। आत्म-समाधिके बिना अचिन्त्य भावोंको समझा नहीं जा सकता है। अतएव अचिन्त्य विषयमें तर्काभित प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकी गति नहीं है।

अचिन्त्याः खलु ये भावाः न तांस्तर्केण योजयेत् ।

प्रकृद्भिः परं यच्च तदचिन्तस्य लक्षणम् ॥

(महाभारत उद्योगपर्व)

प्रकृतिके अन्तर्गत २४ तत्त्वोंके परे जो तत्त्व हैं, वे अचिन्त्यभावमय है। उन अप्राकृत भावोंमें प्रत्यक्ष और अनुमानादि प्रमाणोंका प्रवेश नहीं है। उन्हें अवगत होनेका एकमात्र उपाय है—आत्म-समाधि। किन्तु आत्म-समाधि साधारण लोगोंके लिये असाध्य है। अतएव जीवोंकी ऐसी दुर्गति लक्ष्यकर परमकरुणामय परमेश्वरने वेदशास्त्रोंको प्रकाशित किया है। श्रीमन्महाप्रभुजीने कहा है—

“मायासुग्व जीवेर नाहि कृष्णस्मृति-ज्ञान ।

जीवेर कृपाय कैल कृष्ण वेद-पुराण ॥

वेदशास्त्र कहे—'सम्बन्ध', 'अभिधेय', 'प्रयोजन' ।

'कृष्ण' प्राप्य सम्बन्ध, 'भक्ति' प्राप्ये साधन ॥

अभिधेय-नाम—'भक्ति', 'प्रेम'—प्रयोजन ।

पुरुषार्थ-शिरोमणि प्रेम—महाधन ॥'

(चैतन्यचरितामृत म० २०।१२२-१२२)

अचिन्त्य भावोंको जाननेके लिये केवलमात्र वेद-प्रमाण ही प्राह्य हैं। किन्तु इसमें एक बात विचारणीय है। 'आम्नाय'—शब्दसे 'गुरु परम्परा द्वारा प्राप्त वेद' का बोध होता है। वेदोंमें अनेक प्रकारके उपदेश हैं। भिन्न-भिन्न अधिकारियोंके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारके उपदेश हैं। समस्त प्रकारके अधिकारोंमें भक्ति-अधिकार ही श्रेष्ठ है। हमारे पूर्व-पूर्व महाजनोंने भजनके प्रभावसे आत्मसमाधि द्वारा वेदोंसे भक्ति-अधिकारकी शिक्षाओंको छुँट-छुँट कर पृथक् रूपमें संग्रह कर रखा है। अतएव पूर्व महाजनोंने जिन वेद-वाणियोंको भक्ति-अधिकारके लिए लाभदायक बतलाया है, उन्हें सीखने और आचरणमें लानेकी आवश्यकता है। श्रीगुरुदेवकी कृपासे ही अचिन्त्य भावोंमें प्रवेश किया जा सकता है, अन्यथा उनमें प्रवेश पाना कठिन ही नहीं, नितान्त असंभव है। श्रीमन्महाप्रभुजीने एक उदाहरण देकर इस विषयको स्पष्ट कर दिया है—

एक दिन एक दरिद्रके घर एक सर्वज्ञ ज्योतिषी आया और बोला—'भैया ! तुम इतने दुखी क्यों हो ? तुम्हारे घरमें बहुतसा पितृधन गुप्तरूपसे गड़ा हुआ है। तुम्हारे पिता तुम्हें उस धनका पता बताये बिना ही कहीं विदेशमें अचानक मर गए हैं। तुम उस गुप्त धनका अनुसंधान कर सुखसे जीवन निर्वाह कर सकते हो।'

'यदि आप उसका पता बतला दें तो बड़ी कृपा होगी। मैं इस बातको जानता तो हूँ, किन्तु स्थान मालूम नहीं है। मैंने बहुत ही छान-बीन की है, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। बड़ा उपकार होगा।'—दरिद्र व्यक्तिने सर्वज्ञ ज्योतिषीके पैरोंपर गिर कर कहा। ज्योतिषी दयालु था। उसने आश्वासन देते हुए कहा—'कोई चिन्ता न करो। किन्तु मैं जैसा कहूँगा वैसा ही तुम्हें करना पड़ेगा। तुम्हारे घरके दक्षिण दिशामें वर्रके विकट समूह हैं। उधर

भूलकर भी न खोदना। अन्यथा खोदनेके साथ ही वे निकल कर भारी उत्पात मचा देंगी और धन भी हाथ न लगेगा। पश्चिममें एक यज्ञ है, अतः उधर खोदनेसे वह विघ्न करेगा। उत्तरकी ओर खोदनेसे एक बड़ा भारी अजगर निकलेगा और तुम सभी लोगोंको निगल जायगा। हाँ, पूरवमें थोड़ीसी जमीन खोदते ही तुम्हें अभिलषित धनकी प्राप्ति हो सकती है।' अब सर्वज्ञ ज्योतिषीकी बातोंको मानकर दरिद्र व्यक्तिने पूरवमें थोड़ीसी जमीन खोदी और पचुर परिमाणमें गुप्त पितृधन पाकर मालामाल हो गया।

यहाँ शास्त्र—सर्वज्ञ ज्योतिषी है। मायावद्ध जीव—दरिद्र व्यक्ति है। शास्त्र मायामुग्ध अज्ञ जीवोंको श्रीकृष्णरूप मूल महाधनका अनुसंधान देते हैं और उसकी प्राप्तिके उपाय भी बतलाते हैं। वे कहते हैं—कर्म, ज्ञान और योग आदि मर्गोंकी तरफ न झुको, इनकी तरफ जानेसे केवल दुःख-ही दुःख हाथ लगेगा, कृष्णकी प्राप्ति नहीं हो सकती। कृष्ण तो एकमात्र भक्तिके वश हैं, एकमात्र भक्ति द्वारा ही वे लभ्य हैं। श्रद्धा पूर्वक उनका भजन करो, वे तुम्हें अवश्य प्राप्त होंगे।

(चैतन्यचरितामृतके आधार पर)

जब परमार्थ विपासु साधक अत्यन्त व्याकुल व्याकुल होकर श्रीगुरुदेवके निकट आत्म-तत्त्वके सिद्धान्तोंका श्रवण करता है, तब उसका चित्त क्रमशः निर्मल होकर श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंके प्रति अप्रसर होता रहता है। आम्नाय ही परमार्थके सम्बन्धमें एकमात्र प्रमाण है। इसी प्रमाणका अबलम्बन कर नव प्रकारके प्रमेयोंका विवेचन किया जाता है। आम्नायके आधार पर प्रमेयोंका विचार शुद्ध चित्तमें आविर्भूत होता है। इसीका नाम आत्म-समाधि है। यह आत्म-समाधि ही परमार्थका मूलाधार है।

प्रथम प्रमेय—ब्रह्म, परमात्मा और

भगवान् ही श्रीकृष्ण हैं।

आम्नाय द्वारा सबसे पहले यह जाना जाता है

कि परमब्रह्म श्रीहरि ही जीवोंके एकमात्र उपास्य हैं। इन्हीं श्रीहरिकी पद्म-नख-ज्योतिको निर्विशेष ब्रह्मवादी निर्विशेष चिन्ता द्वारा निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें दर्शन करते हैं। वे हरि ही अपने एक अंशसे परमात्मा अथवा ईश्वरके रूपमें उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण हैं। वे हरि ही स्वयं कृष्ण हैं, परमात्मा—विष्णु हैं, तथा उनकी ज्योति—ब्रह्म हैं। सर्व शक्तिमान श्रीहरिका तत्त्व विचार करने पर परब्रह्म संबन्धी समस्त संदेह दूर हो जाते हैं। जबतक हृदय में संशय बने रहते हैं, तबतक साधक प्राकृत ज्ञानके विपरीत एक निर्विशेष भाव ग्रहण कर ब्रह्मका अनुशीलन करता रहता है। फिर अंश रूप परमात्माकी प्राप्तिके लिए अष्टांग आदि योगोंकी कल्पना करता है। किन्तु सध प्रकारसे संशयरहित होनेपर ही एकमात्र कृष्णमें निश्चला भक्ति उदित होती है।

द्वितीय प्रमेय—श्रीहरि अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न हैं

आम्नायके आधार पर द्वितीय प्रमेयका विचार हृदयमें उदित होता है—परम ब्रह्म श्रीहरि स्वाभाविक अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न हैं। वे अपनी एक शक्ति द्वारा जीवोंके अस्फुट ज्ञानाधार पर ब्रह्मके रूपमें प्रतिभात होते हैं। इस शक्तिका नाम निर्विशेष-शक्ति है। फिर वे अपनी अनन्त शक्तियों द्वारा ब्रह्म और परमात्माको क्रोड़ीभूत कर अपनी भगवत्ताका प्रकाश करते हैं। इसका नाम 'सविशेष-शक्ति' है। निर्विशेष और सविशेष—ये दोनों शक्तियाँ उनमें नित्य वर्तमान रहने पर भी सविशेष शक्तिका बल ही अधिक दीख पड़ता है।

परास्य शक्तिर्विधैव श्रुयते,

स्वाभाविकी ज्ञान बल-क्रिया च।

(श्वे० उ० ६।८)

उस पराशक्तिकी सन्धिनी, सम्बिन्धु और ह्लादिनी-नामक तीन प्रकारकी शक्तियाँ हैं। ये तीनों शक्तियाँ भक्तोंके सहज ही ज्ञानगम्य होती है।

तृतीय प्रमेय—श्रीकृष्ण रस-स्वरूप हैं

आम्नाय कहते हैं—परब्रह्म श्रीकृष्ण—परम

अप्राकृत रस हैं। जिस रसके प्रभावसे चित्त-अचित्त उभय जगत् उन्मत्त हो उठता है, वही श्रीकृष्णका स्वरूप है। इसीलिये श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—'मैं ही ब्रह्मकी प्रतिष्ठा हूँ'। इस परम रसके प्रभावसे ही चित्त और जड़ जगत्में अनन्त विचित्रताएँ हैं। चित्त जगत्का रस शुद्ध होता है। जड़ जगत्में जो रस दीख पड़ता है, वह चिज्जगत्के रसकी छाया है—शुद्ध रस नहीं है। भगवान्की अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे श्रीव्रजलीला प्रपञ्चमें उदित होती है, जहाँ चित्त जगत्के अनन्त रस प्रकटित हैं। जीवमात्र रसका अधिकारी है। यह परम रस जीवोंका प्राप्य-धर्म है। भजनके प्रभावसे जीव अप्राकृत-रसको प्राप्त करता है। ब्रह्म-प्राप्ति नितान्त नीरस व्यापार है। अतएव ब्रह्म-प्राप्ति अवाञ्छनीय है। परमात्म-योगमें भी रस नामकी कोई वस्तु नहीं। केवल कृष्ण ही रस-स्वरूप हैं और इनका भजन ही रसमय है।

चतुर्थ प्रमेय—जीव-तत्त्व; उसकी स्वतंत्रता और स्वरूप

आम्नाय कहते हैं—जीव, कृष्णरूप चित्त सूर्यके अणु-समूह हैं। इनकी संख्या अनन्त है। जिस प्रकार कृष्णकी चित्त शक्तिसे चित्त जगत् और अपरा माया शक्तिसे जड़ जगत् प्रादुर्भूत होता है, उसी प्रकार उनकी परा स्वच्छचित्त शक्तिसे जीव-जगत् प्रकाशित होता है। श्रीकृष्णके चिद्धर्ममें जो समस्त गुण पूर्णमात्रामें होते हैं, वे ही गुण विन्दु-विन्दु परिमाणमें अणु जीवोंमें स्वभावतः वर्तमान हैं। श्रीकृष्णमें स्वातंत्र्य-धर्म पूर्णरूपमें हैं; उसी स्वातंत्र्य-धर्मका एक कण जीव-स्वरूपमें भी लक्षित होता है। उसी धर्मके द्वारा जीवोंमें स्वाभाविक स्वातंत्र्य-धर्म नित्य-सिद्ध है। इसी स्वतंत्रताके कारण जीवोंकी प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। एक प्रवृत्ति द्वारा जीव स्व-सुखका अनुसंधान करता है तो दूसरी प्रवृत्ति द्वारा वह कृष्ण-सुखका अन्वेषण करता है। अब प्रवृत्ति-के भेदसे जीव दो प्रकारके हुए—स्व-सुखान्वेषी और

कृष्ण-सुखान्वेषी । स्व-सुखान्वेषी जीव—नित्यवद्ध हैं तथा कृष्ण-सुखान्वेषी जीव—नित्यमुक्त होते हैं ।

अचिन्त्य भाव-समूह चित्कालके अनुगत होते हैं । चिञ्जगत् अर्थात् वैकुण्ठके कालमें केवलमात्र नित्य वर्त्तमान रूप धर्म होता है । किन्तु अपरा मायाशक्तिगत कालमें भूत, भविष्य और वर्त्तमान रूप त्रिविध-धर्म होते हैं । अतएव इस विषयके समस्त विचारोंको चित्त-कालके अन्तर्गत कर लेने पर कोई

संशय नहीं रह जाता । किन्तु उन्हें जड़कालके अन्तर्गत करने पर अनेक संशय उत्पन्न होते हैं । जीव शुद्ध चित्करण होकर भी वह स्व-सुखका अन्वेषण क्यों करता है—ऐसा वितर्क करनेपर जड़िय कालगत संशय उपस्थित होता है । इस संशयका परित्याग होनेपर ही भजन संभव होता है । अचिन्त्य भावोंके सम्बन्धमें तर्क-वितर्क करनेसे केवलमात्र अनर्थ ही पैदा होता है ।

(क्रमशः)

शरणागति

[अचिन्त्यपाद श्रीमद्भक्तविनोद ठाकुर]

छोड़ कर पुरुष-अभिमान ,
किङ्करी हुआ आज मैं कान्ह ॥
ब्रजविपिनमें सखीके साथ ,
करूँ सेवा मैं राधानाथ ।
नव कुसुम ले गूँधूंगी हार ,
तुलसी-मणि-मञ्जरी सबार ॥
यत्नसे दूँगी सखिके हाथ ,
सखि उसे ले आदरके साथ ।
युगल कण्ठोंमें देगी डाल ,
दृश्य देखूँ मैं मुग्धा बाल ॥
सखी कहेगी—‘सुनो सुन्दरी ,
रहो इस कुँजमें बन किङ्करी ।
गूँथो माला मनोहारिनी ,
नित-नित राधाकृष्ण विमोहिनी ॥
तव रक्षाका भार हमारा ,
कुञ्ज कुटीर मम हुआ तुम्हारा ।
राधा-माधव सेवन काल ,
रहियो तुम हमरो अन्तराल ॥
सजा कपूर लगाकर पान ,
मुझे देना सखि अपनी जान ।
भक्ति विनोद सुनत यह बात ,
सखी चरणन कीन्हों प्रणिपात ॥

गीताकी वाणी

तेरहवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीताके प्रथम छः अध्यायोंमें निष्काम-कर्म द्वारा साध्य जीवात्मज्ञान का और द्वितीय छः अध्यायोंमें भक्तिका उपदेश कर अब अन्तिम छः अध्यायोंमें प्रकृति, पुरुष, जगत्, ईश्वर तथा कर्म, ज्ञान और भक्तिका स्वरूप निरूपण करते हैं। प्रस्तुत अध्यायमें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका तत्त्व बतला रहे हैं—प्रकृतिके उपादानसे गठित पाञ्चभौतिक शरीरका नाम 'क्षेत्र' है और जो इस क्षेत्रको जानता है, वह 'क्षेत्रज्ञ' कहलाता है। किन्तु ईश्वर समस्त जगत्के प्रधान क्षेत्रज्ञ हैं। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञको तत्त्वतः जान लेने पर तत्त्वज्ञान होता है। पाञ्चभौतिक शरीर भोक्ता जीवोंका भोगायतन (भोगका घर) होने के कारण 'क्षेत्र' कहलाता है। जीव स्व-स्व भौतिक शरीरको ही भोग और भोग आदिके साधनोंका क्षेत्र मानता है। किन्तु सर्वेश्वर परमात्मा सबका भरण-पोषण और नियमन आदि कार्य करते हैं। इसलिये वे समस्त क्षेत्रोंके ज्ञाता हैं। इनके सम्बन्धमें ऋषियों ने अनेक प्रकारसे वर्णन किया है तथा वेद और वेदान्तमें भी इनका पृथक्-पृथक् विस्तृत विवेचन किया गया है।

उपर्युक्त विषयको पुनः विस्तारपूर्वक बतला रहे हैं—पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त अर्थात् प्रधान, दस इन्द्रियाँ, मन, तथा रूप, रस, गन्ध शब्द और स्पर्शादि पाँच इन्द्रियोंके पाँच विषय—ये २४ तत्त्व ही 'क्षेत्र' हैं। इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, पाँचभौतिक स्थूल देह और लिङ्गदेहके व्यापार तथा धृति—यह सब क्षेत्रके विकार हैं। मानहीनता, दुःमहीनता, अहिंसा, क्षमा, सरलता, आचार्यकी उपासना, शौच (जल-मिट्टीसे बाह्य-शौच तथा भाषणशुद्धि द्वारा आंतर शौच), स्थिरता, मनका भलीभाँति निग्रह, इन्द्रियोंके भोगोंमें वैराग्य,

अहंकारहीनता, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, एवं दुःख रूप दोषोंको बार-बार देखना; स्त्री-पुत्र, घर-बार और देहमें अनासक्ति, स्त्री-पुत्रदिके सुख-दुःखमें उदासीनता, इष्ट और अनिष्ट सबमें समचित्त रहना, भगवान्के प्रति अनन्य भक्ति, एकान्त स्थानमें रहनेका स्वभाव, दुर्जन-समुदायमें अप्रीति, नित्य अध्यात्म-ज्ञानका अनुशीलन तथा तत्त्व ज्ञानका अनुसंधान—यह सब २० प्रकारका व्यापार ज्ञानका स्वरूप है। इनके अतिरिक्त समस्त ज्ञानोंको 'अज्ञान' कहते हैं। इन उपर्युक्त २० व्यापारोंमें श्रीकृष्णके प्रति अन्यन्या भक्ति ही एकमात्र आदरणीय है। दूसरे-दूसरे १६ व्यापार भक्तिके आवांतर फलके रूपमें क्षेत्र-शुद्धिमें सहायक होते हैं।

क्षेत्र-वस्तु अनादि, भगवद्धीन, सत्-असत् अर्थात् कार्य-कारणसे परे जीव-स्वरूप 'ब्रह्म' कही जाती है। उसे तत्त्वतः जान लेने पर भगवद्भक्ति रूप अमृत-भोग लाभ होता है। गीता में 'ब्रह्म'-शब्द जीव और महत्तत्त्वके लिए व्यवहृत हुआ है।

अनन्तर परम ब्रह्मका स्वरूप निर्णय करते हैं—जैसे किरण-समूह सूर्यको आश्रयकर प्रकाशित होता है, उसी प्रकार किरण-करणरूप अणुचिदंश जीवात्मा भगवान्के प्रभाव-स्वरूप परमात्म-तत्त्वके आश्रित होता है। वह परमात्मा तत्त्व अनन्त हाथ, पैर, अनन्त सिर, नाक, कान, नेत्र और मुखों वाला है तथा इस जगत्में सबको ढककर विराजमान है। वह समस्त इन्द्रियोंके गुणोंके द्वारा भासमान, स्वयं प्राकृष्ट इन्द्रियोंसे रहित, अनासक्त, सबका भरण-भोषण करनेवाला, प्राकृत गुणोंसे रहित अथच त्रिगुणतीत ६ गुणोंका भोक्ता भी है। वह भूतोंके अन्दर और बाहर सर्वत्र विराजमान है। उसीसे चर-अचर समस्त जगत् उत्पन्न

हुआ है। अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे वह अविज्ञेय है। वह दूरस्थ है और समीप भी। वह समस्त प्राणियों में परमात्माके रूपमें पृथक्-पृथक् विराजित होनेके कारण विभक्तसा जान पड़ने पर भी अविभक्त-स्वरूप है। वह तत्त्व सबका भर्ता, स्रष्टा और संहारकर्त्ता है। वह ज्योतियोंकी भी ज्योति और प्रकृतिसे परे है तथा वह ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञानगम्य स्वरूपसे सब के हृदयमें विराजमान है। इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेय तत्त्वों को जानकर भक्तजन निरुपाधिक प्रेमके अधिकारी हो सकते हैं। भक्तजन कपट ज्ञान का आश्रयकर वास्तव ज्ञानका स्वरूप उपलब्धि करनेसे वंचित रह जाते हैं। शरणागत व्यक्ति ही भगवान् को जान सकता है—अन्यान्य लोग उनको जान नहीं पाते।

प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं। जड़ीयकाल के प्रारम्भ होनेके पहलेसे ही ये वर्त्तमान हैं। चिन्मय अखण्डकालसे इनकी उत्पत्ति हुई है; किन्तु समस्त विकार (देह और इन्द्रियादि) तथा गुण (सुख-दुःखदि) प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं। इसलिए शरीर और इन्द्रियोंका हेतु प्रकृति होने पर भी सुख-दुःखके भोक्तृपनमें जीव स्वयं हेतु है। जीव अपनी इच्छासे प्रकृतिके अधीन होकर अच्छी-बुरी नाना-प्रकारकी योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है तथा प्रकृतिसे उत्पन्न विषयोंको भोगता है। परमात्मा जीवात्माके निकट अवस्थित कर भी उपद्रष्टा, अनुमन्ता भर्ता, भोक्ता तथा महेश्वर-स्वरूप है।

जो इस प्रकृति, पुरुष और परमात्माका तत्त्व जान लेता है, वह पुनः जन्म नहीं लेता है। इस महेश्वर तत्त्वको कोई-कोई ध्यानके द्वारा, कोई-कोई साख्ययोग के द्वारा और दूसरे कर्मयोगके द्वारा दर्शन करते हैं, परन्तु इन मार्गोंसे दर्शनमें बहुत ही विलम्ब होता है तथा विघ्न-बाधाएँ भी बहुत होती हैं। कर्मयोगीसे हीन श्रेणीके जिज्ञासुगण कीर्त्तनकारी तत्त्वज्ञोंके समीप श्रवण द्वारा उक्त तत्त्वको जानते हैं। ये लोग भी सत्संगके प्रभावसे भक्ति लाभ कर पार कर जाते हैं। चर-अचर समस्त प्राणी-जगत् क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके

संयोगसे ही उत्पन्न होता है। परमात्मा समस्त नश्वर भूतोंमें अवस्थित होकर भी अविनश्वररूपमें सर्वदा वर्त्तमान रहता है। जो इस परम तत्त्वका दर्शन कर लिए हैं, वे ही यथार्थ तत्त्वज्ञानी हैं। जो समस्त प्राणियोंमें समभावसे स्थित ईश्वरका दर्शन करता हुआ हिंसा-द्वेषसे रहित हो जाता है, वह परम गति को प्राप्त होता है।

आत्मा विज्ञानानन्द-स्वरूप है। वह दुःखजनक कार्योंका कर्त्ता नहीं है। किन्तु अनादिकालसे भोग-वासनाके कारण जीव प्रकृतिके धशीभूत है और तभीसे प्रकृति उन्हें शरीर और इन्द्रियाँ प्रदानकर उन्हें सुख-दुःख भोग कराती है। प्रकृति यह सब कार्य ईश्वरकी प्रेरणासे ही करती है। किन्तु शुद्ध जीव इन सबसे अतीत और स्वतन्त्र होता है। इस प्रकार जीवोंकी शुद्ध-सत्ताका अनुभव होने पर ब्रह्मत्व सिद्ध होता है अर्थात् अपहृतपाप्मा, विजर, विशोक, विमृत्यु, विजिघत्स, अपिपास, सत्यकाम और सत्य-सङ्कल्प—इन आठ गुणोंका आविर्भाव होता है। इन आठ गुणोंके आविर्भाव होनेको ही ब्रह्म-सिद्धि कहते हैं और ब्रह्म-सिद्धि होने पर ही शुद्ध-भक्तिमें अधिकार प्राप्त होता है। ऐसी अवस्थामें जीव परमात्माको अनादि, निर्गुण और अव्यय तत्त्वके रूपमें दर्शन करता है तथा पाञ्चभौतिक शरीरमें स्थित होकर भी उसमें लिप्त नहीं होता। जिस प्रकार आकाश सर्वत्र व्याप्त रह कर भी किसी वस्तुमें लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार आत्मा भी समस्त शरीर में स्थित होकर भी उसमें लिप्त नहीं होता। जैसे एक ही सूर्य समस्त लोकको प्रकाशित करता है, वैसे ही क्षेत्रज्ञ आत्मा समस्त क्षेत्रको प्रकाशित करता है।

जो इस प्रकार क्षेत्र-क्षेत्रज्ञके भेदको और प्राणियों के जड़ा प्रकृतिसे मोक्ष-तत्त्वको जान लेता है वह परमधाममें गमन करनेका अधिकारी है। अतएव सत्संगमें इन सब तत्त्वोंका श्रद्धापूर्वक श्रवण करना प्रत्येक कल्याणकामी व्यक्तिका कर्त्तव्य है। इन तत्त्वों को स्वयं पढ़कर उपलब्ध नहीं किया जा सकता है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रीती महाराज

अचिन्त्यभेदाभेद

[पूर्व प्रकाशित वर्ष ३, संख्या ९, पृष्ठ ३६ से आगे]

हरिदास

अनन्त और सुन्दरानन्द की इस प्रकार साहजिक प्रीतिको लक्ष्यकर नवद्वीपके हरिदास बाबाजीने भी इनके साथ योगदान किया। फिर तो सोनेमें सुहागा मिल गया। हरिदास बाबाजीने अनेक सहजिया ग्रन्थोंको प्रकाशित किया है। उन्होंने अनेक अभिन्नव अप्रकाशित ग्रन्थोंको प्राचीन-प्राचीन वैष्णवोंके नाम सृष्टिकर उनके द्वारा रचित बतलाकर प्रकाशित किया है और अब भी प्रकाशित कर रहे हैं तथा ये अनन्त वासुदेव द्वारा उनके समस्त पूर्व नामोंको छिपाकर पुरीदास गोस्वामीके नामसे वैष्णव-ग्रन्थोंको प्रकाशित करवाते हैं। ये ग्रन्थ यों ही किसी सरल उद्देश्यसे नहीं लिखे गये हैं, बल्कि इन ग्रन्थोंके भीतर जगह-जगह सहजिया विचारधाराके परिपोषक अनेक वाक्योंको सन्निवेशित कर तथा जगह-जगह से उक्त चिन्ता-धाराके विरुद्ध वाक्य-समूहोंको निकाल बाहर कर एक नयी धारामें नवीन संस्करण प्रकाशित किया गया है। इसलिए पण्डित-मण्डली इन संस्करणोंको संदेहकी दृष्टिसे देखती है। यह संस्करण-विना मूल्यके केवल सहजियोंमें ही वितरित किया गया है। जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके शिष्योंको एकभी ग्रन्थ विना मूल्यकी बात तो दूर रहे, मूल्य देने पर भी नहीं दिया जाता है। और जिनको ये पुस्तकें दी जाती हैं उनसे यह प्रतिज्ञा करवाली जाती है कि वे गौडीय मठसे संबंधित किसी भी व्यक्तिको ये पुस्तकें नहीं दिखलावेंगे। इससे सुधी पाठक समझ सकते हैं कि ऐसे संस्करण

की विशुद्धता कितनी दूर तक विश्वासयोग्य है।

पुरीदासका संकलन चातुर्य

सुन्दरानन्द विद्याविनोद महाशयने इस नये संस्करणका अवलम्बन कर 'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' ग्रन्थका संकलन किया है अथवा उसकी रचना की है। उन्होंने पुरीदास गोस्वामीके संस्करणसे जिन-जिन वाक्योंको उद्धृत किया है, उनसे दूसरे-दूसरे संस्करणोंसे मिलाकर देखनेसे पता चला है कि पुरीदासवाले संस्करणमें अनेक स्थानोंमें परिवर्तन हैं। उदाहरण-स्वरूप पुरीदासके संकलित 'तत्त्वसन्दर्भ' का कुछ अंश यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ —

“यत् खलु पुराणजातमाविर्भाव्य, ब्रह्मसूत्रञ्च प्रणीयाप्यपरितुष्टेन तेन भगवता निजसूत्राणामकृत्रिम-भाष्यभूतं समाधिलब्धमाविर्भावितम्;— यस्मिन्नेव सर्वशास्त्र-समन्वयो दृश्यते, सर्ववेदार्थलक्षणं गायत्री-मधिकृत्य प्रवर्तितत्वात्। * * * गारुडे च— अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ-विनिर्णयः। गायत्री-भाष्यरूपोऽसौ वेदार्थ-परिवृंहितः ॥ * * * ब्रह्म-सूत्राणामर्थस्तेषामकृत्रिम-भाष्यभूत इत्यर्थः। पूर्वं सूक्ष्मत्वेन मनस्याविर्भूतम्, तदेव संक्षिप्य सूत्रत्वेन पुनः प्रकटितम्, पश्चाद्-विस्तीर्णत्वेन साक्षात् श्रीभाग-वतमिति। तस्मात्तद्भाष्यभूते स्वतःसिद्धे तस्मिन् सत्यवर्षीवीनमन्यद्न्येषां स्वस्वकपोल-कल्पितं तदनुगत-मेवादरणीयमिति गम्यते।”†

† [उक्त संस्कृत अंशको विद्याविनोद महाशयने 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' ग्रन्थकी भूमिकामें 'कुछ प्रारम्भिक बातें'—शीर्षकके पृष्ठ २ के उद्धृत अंशके प्रमाण-स्वरूप २-१ पादटीका में लिखा है,—'तत्त्वसन्दर्भ, १०-११ अनुच्छेद (श्रीमत् पुरीदास गोस्वामी सम्पादित संस्करण)']

उक्त तत्त्वसन्दर्भसे उद्धृत अंशके साथ हमने देवनागरी अक्षरोंमें मुद्रित अत्यन्त प्राचीन तत्त्वसन्दर्भको तथा सत्यानन्द गोस्वामी द्वारा १३१८ बंगाल में बंगालुवादके साथ प्रकाशित तत्त्वसन्दर्भको मिलाकर देखा है कि अन्तिम दोनों तरव संदर्भोंसे पुरीदास-संस्करण में बहुतसे परिवर्तन हैं; किन्तु देवनागरी और सत्यानन्द गोस्वामीके संस्करणोंमें कोई भी अन्तर नहीं है। पुरीदासवाले संस्करणमें जिन-जिन शब्दों या वाक्योंको निकाल दिया गया है उन्हें स्पष्ट दिखलानेके लिये मोटे-मोटे अक्षरोंमें देकर उक्त उद्धृत अंशका शुद्धपाठ नीचे दिया जा रहा है—

यत् खलु 'सर्व'—पुराणजातमाविर्भाव्य, ब्रह्मसूत्रञ्च प्रणीयाप्यपरितुष्टेन तेन भगवता निजसूत्राणामकृत्रिमभाष्यभूतं समाधिलब्धमाविर्भावितम्;—यस्मिन्नेव सर्वशास्त्र समन्वयो दृश्यते, सर्ववेदार्थ 'सूत्र'—लक्षणं गायत्रीमधिकृत्य प्रवर्तितत्त्वात् । * * * गारुडे च—'पूर्णः सोऽयमतिशयः' । अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ-विनिर्णयः । गायत्रीभाष्यरूपेऽसौ वेदार्थ-परिवृद्धितः । * * *

—तत्त्वसन्दर्भ १६, २१ अनुच्छेद—(सत्यानन्द और देवनागरी संस्करण) ।

अथात् 'यत् खलु' के बाद 'सर्व' और 'सर्ववेदार्थ' के बाद 'सूत्र' एवं गारुडे च—'के बाद 'पूर्णः सोऽयमतिशयः ।' ये तीन वाक्य पुरीदासके संस्करणसे निकाल दिये गये हैं। अतः पुरीदास अर्थात् अनन्तवासुदेव द्वारा प्रकाशित किसी भी ग्रन्थकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं।

हमने पहले ही कहा है कि सुन्दरानन्द विद्याविनोद, नव-धिविहित भक्ति प्रसाद पुरी (पुरीदास गोस्वामी अथवा अनन्तवासुदेव) और हरिदास तीनोंने पड़यंत्र कर श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय वैष्णव आम्नायको उखाड़ फेंकनेके लिए अनेक ग्रन्थोंको अनेक नामोंसे प्रकाशित किया है और प्रकाशित कर रहे हैं। इनमें विद्याविनोद महाशयने एककी भूमिकामें

'कुद्ध प्रारम्भिक वार्ते' नामक शीर्षकके १६ वें पेज में हरिदास द्वारा प्रकाशित 'श्रीचैतन्यमतमञ्जूषा' नामक एक आधुनिक ग्रन्थ (श्रीमद्भागवतकी टीका) का जो उल्लेख किया है, वह इस प्रकार है—

“श्रीकविकर्णपुर गोस्वामीके गुरुदेव श्रीश्रीनाथ चक्रवर्ती कृत “श्रीचैतन्यमतमञ्जूषा” के उपक्रमके 'आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयः' श्लोकसे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि तत्त्ववादके गुरु श्रीमन्मध्वाचार्यकामन श्रीकृष्ण चैतन्यके मतसे प्रथक है” इस वाक्यकी नं० २ पादटीकामें प्रमाणके रूपमें उद्धृत कर लिखते हैं कि—“ (२) श्रीचैतन्यमतमञ्जूषा— श्रीहरिदास दासेन प्रकाशिता, ४६६ चैतन्याब्द, श्रीधाम नवद्वीप ।” यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि उक्त टिप्पणी-ग्रन्थ विद्याविनोद महाशय द्वारा परिचालित कृष्णनगर-नदियाके श्रीभागवत प्रेसमें श्रीशैलेन्द्र गोवर्द्धन ब्रह्मचारी द्वारा सर्व-प्रथम मुद्रित हुआ है। प्राचीन-ग्रन्थोंमें अथवा आजतक किसी भी गोस्वामी-ग्रन्थोंमें कहीं भी श्रीनाथ चक्रवर्ती द्वारा रचित 'श्रीचैतन्यमतमञ्जूषा' नामक श्रीमद्भागवतकी टिप्पणीका उल्लेख नहीं है। बल्कि हरिदास दासके उर्वर मस्तिष्कसे आविर्भूत होकर इस ग्रन्थने ४६६ चैतन्याब्द, गौरजयन्ती अर्थात् सन १६५३ के २८ वीं फरवरीको ही सर्व प्रथम सूर्यालोकका दर्शन किया है।

सुबोध साहाका पड्यन्त्र भी अचिन्त्य है

हमने पहले ही निवेदन किया है कि सुन्दरानन्द (सुबोध साहा), अनन्तवासुदेव (पुरीदास) और हरिदास तीनोंने मिलकर किसी दूरवर्ती असत् उद्देश्य को पूर्ण करनेके लिये नाना प्रकारके ग्रन्थादि प्रकाशित कर रहे हैं। इसका एक स्पष्ट प्रमाण हम पाठकों के सामने उपस्थित कर रहे हैं। विद्याविनोद महाशयका 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' ग्रन्थ ३० गोविन्द, ४६४ गौराब्दके गौर-आविर्भाव तिथिको (६ चैत्र १३५८ बंगाल, २३ मार्च सन् १६५१ ई०) प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थमें ४६६ श्रीचैतन्याब्द श्रीश्रीगौरजयन्ति (१६ फाल्गुन १३५७ बंगाल, २८ फरवरी

सन् १६५३ ई०) अर्थात् २ वर्ष बादमें प्रकाशित हरिदास दासके 'श्रीचैतन्यमतमंजूषा' का उल्लेख कैसे संभव हो सकता है? हम इसे समझ नहीं पाते।* हाँ, प्राचीन ऐतिहासिकोंसे यह अवश्य विदित होता है कि रामका जन्म होनेके पहले ही बलमीकि-मुनिने रामायण की रचना की थी। उसी प्रकार हो सकता है विद्याविनोद महाशयने भी 'श्रीचैतन्यमतमंजूषा' की रचना और उसके प्रकाशनके १ वर्ष पहले ही उसका उल्लेख कर दिया हो।

'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' ग्रन्थमें 'श्रीचैतन्यमतमंजूषा' का उल्लेख रहनेसे यह स्पष्ट ही समझा जा सकता है कि—'श्रीचैतन्यमतमंजूषा' ग्रन्थ प्रकाशित होनेके बाद ही 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। यदि ऐसा न हो तो मंजूषा-ग्रन्थके प्रकाशित होनेकी तिथिको भूल अथवा मुद्राकर-प्रमाद मानना पड़ेगा। अथवा 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' पीछे मुद्रित हुआ है और इसमें भूलवशतः ४६४ गौराब्द छप गया है। अथवा अचिन्त्यभेदाभेदवादकी भूमिकाका पृष्ठ २ दो वर्षके बाद पूर्वपत्रको हटाकर जोड़ दिया गया है। अथवा दोनों ग्रन्थोंके मुद्रित और प्रकाशित होनेकी तारिखें ठीक ही हैं—ऐसा भी क्यों न मान लिया जाय, किसी भी अवस्थामें विद्याविनोद महाशय इस प्रकार अवैध कार्यके हाथसे छुटकारा नहीं पा सकते। क्योंकि यह एक दृष्टनीय अपराध है। जैसा भी हो हम लोग इसे ही कहते हैं—पड़यंत्र, कृत्रिमता और यथार्थ सत्यकी हत्या। किन्तु हाँ, विद्याविनोद महाशयने 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' में जिस प्रकारसे मस्तिष्क-चालनकी भङ्गीका प्रदर्शन किया है, उससे ४६४ गौराब्दमें ४६६ गौराब्दकी

भविष्यत वाणीको अतीताब्द बतलाना भी एक अचिन्त्य व्यापार ही है। ऐसे-ऐसे अचिन्त्य विषयों को लेकर ही उन्होंने अचिन्त्यभेदाभेदवाद या अचिन्त्य-अभेद-वाद प्रकाशित किया है।

श्रीचैतन्यमतमंजूषा और श्रीश्रीनाथ चक्रवर्ती

प्रसंगवश हम यहाँ पर श्रीहरिदासकी 'श्रीचैतन्यमतमंजूषा' नामक श्रीमद्भागवतकी टीका और उसके रचयिता श्रीश्रील श्रीनाथ महाशयके सम्बन्धमें दो-एक बातें बतला रहे हैं—

श्रीनाथ चक्रवर्ती अद्वैत प्रभुके शिष्य और कवि कर्णपुरके गुरु थे। अतएव गुरुपरम्परा और कालके अनुसार वे छः गोस्वामियोंके श्रद्धाके पात्र हैं तथा उनसे कुछ पहले प्रकट थे—ऐसा माना जा सकता है। उनको दीर्घायु मान लेने पर ऐसा माना जा सकता है कि उनके साथ जीव गोस्वामीकी भेंट हुई थी। 'चैतन्यमतमंजूषा' श्रील श्रीनाथ चक्रवर्ती द्वारा रचित होनेपर गौड़ीय समाजमें 'श्रीचैतन्यमतमंजूषा' ही श्रीमद्भागवतकी प्रथम टीका मानी जाती और यही टीका सबके लिये आदर्श होती। श्रील सनातन गोस्वामी, श्रीरूपगोस्वामी, जीवगोस्वामी, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, बलदेवविद्याभूषण आदि किसी भी आचार्यने उस टीकाका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं किया है। परन्तु इस टीकाके उल्लेख न होनेपर भी इस विषयमें कोई मतभेद नहीं है कि ये श्रीगौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायके एक पंडित आचार्य्य थे। कविकर्णपुरने श्रीगौरगणोद्देशदीपिकामें उनको अपना गुरु माना है।† कविकर्णपुर शिवानन्दसेनके पुत्र थे।

* (उसके सम्बन्धमें 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' ग्रन्थकी भूमिकाके पृष्ठ २ की नं० २ पादटीका विशेष रूपमें दृश्य है।) पादटीका नं० २—'श्रीचैतन्यमतमंजूषा—हरिदास दासेन प्रकाशित ४६६ श्रीचैतन्याब्द, श्रीधाम नवद्वीप।'

† गुरुं नः 'श्रीनाथानिधिमवनिदेवान्वय-वधुं
नुमोमुपारत्नं शुभ हव विभोरस्य वक्षितम् ।
यदास्यादुन्मीलशिरवक वृन्दावनरहः—

कथा स्वादं लब्ध्वा जगति न जनः कोऽपि रमते ॥३॥
पितरं श्रीशिवानन्दं सेन-वंश-प्रदीपकम् ।
वन्देऽहं परया भक्त्या पार्वदाय्यं महाप्रभोः ॥४॥

श्रीनाथ चक्रवर्ती ठाकुर छः गोस्वामियोंसे आयु में बड़े होनेपर भी वे सभी समसामयिक थे—इसमें कोई संदेह नहीं। श्रीनाथजीने श्रीरूप-सनातन आदिके ग्रन्थोंका कोई उल्लेख नहीं किया है अथवा उनके किसी ग्रन्थसे भी कोई प्रमाण नहीं लिया है। अवश्य ऐसा करना भी स्वाभाविक नहीं है; क्योंकि ये श्रीरूप सनातनजीसे कुछ पहलेके महाजन हैं। श्रीरूप और सनातनने भी कहीं भी उनके 'चैतन्यमतमंजूषा' का कोई प्रमाण आदि लेना तो दूर रहे उसका कोई जिक्र तक नहीं किया है। इन दोनों गोस्वामियोंके अतिरिक्त किसी भी वैष्णव आचार्यने इस ग्रन्थका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं किया है। केवल आधुनिक १०-१२ वर्षोंसे ही इसका अस्तित्व लक्ष्य किया जा रहा है। किसी भी प्रामाणिक ग्रन्थमें इसका उल्लेख न देखकर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि—यह ग्रन्थ एक सर्वथा नवीन रचना है तथा यह विशुद्ध गौड़ीय सम्प्रदायके विरुद्ध है। सहजियारूप अपधर्मकी स्थापनाके लिये ही इस ग्रन्थकी रचना की गयी है। इसकी विशुद्धता और प्राचीनताके सम्बन्धमें तथा

इसको श्रीनाथ चक्रवर्ती द्वारा रचित माननेमें अनेक आपत्तियाँ हैं। ऐसा सन्देह करनेका और भी एक कारण नीचे दिया जा रहा है—

'श्रीचैतन्यमतमंजूषा' टीका जिस समय पड़यन्त्र कारियोंकी कल्पनाके अन्दर आलोडित हो रही थी, उसी समय 'श्रीश्रीगौड़ीय वैष्णव साहित्य नामक एक और इतिहास ग्रन्थ भी लिखा जा रहा था। क्योंकि मंजूषाकी भित्ति-स्थापनाके लिये गौड़ीय-वैष्णव साहित्यका इतिहास (१) संकलन करनेकी बड़ी आवश्यकता थी। इन 'गौड़ीय-वैष्णव साहित्यके' १०वें परिच्छेदके ११०-१११वें पृष्ठमें—'श्रीनाथ चक्रवर्ती और श्रीचैतन्यमतमंजूषा' नामक एक प्रबन्ध लिखा है। इस प्रबन्धमें श्रीनाथजीके सम्बन्धमें कुछ भी न लिख कर इस कल्पित मंजूषाका ही परिचय विशेषरूपमें दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मंजूषा' नामक टीका लिखनेकी कल्पना करके सबसे पहले एक इतिहास-ग्रन्थ लिखा गया और इस इतिहास ग्रन्थमें कल्पित मंजूषाके वर्णनीय विषयोंका संक्षिप्त

ये विख्याताः परीवाराः श्रीचैतन्य-महाप्रभोः ।
निश्चयान्दाहृतयोश्च तेषामपि महोत्सवाम् ।
गोपालानाञ्च पूर्वाणि नामानि यानि कानिचित् ।
स्व-स्व-ग्रन्थे स्वरूपाद्यैर्दशितान्यादि-सूरिभिः ।

विलोकयान्यादि साधूनां मधुरौडू-निवासिनाम् ।
गौड़ीयानामपि मुखाक्रिशम्य स्व-मनीषया ।
विविध्यान्नेदितः कैश्चित् कैश्चित्तानि लिखाम्यहम् ।
नाम्ना 'श्रीपरमानन्द दासः' सेवित-शासनः ॥२॥

अर्थात् श्रीगौराङ्गदेवके प्रिय, ब्राह्मण वंशके चन्द्र, जगत्के आभूषण और रत्नस्वरूप उन 'श्रीश्रीनाथ' नामक गुरुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ, जिनके मुख-कमलसे निकली हुई श्रीकृष्णकी मधुर वृन्दावनकी निर्जन केलि-कथाओंका आस्वादन कर जगत्में ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो आनन्दित न होगा ? ॥३॥

जो महाप्रभुजीके श्रेष्ठपार्श्व हैं, जो सेन-वंशके प्रदीप हैं, उन अपने पिता श्रीशिवानन्दसेनकी मैं परम भक्तिके साथ वन्दना कर रहा हूँ ॥४॥

श्रीचैतन्य महाप्रभु, निरयानन्द और श्रीअहैतके जो सब विख्यात परिवार हैं, उनके नामोंका अथवा महानुभाव गोपवंशके नामोंका जिन्हें आदि परिचित श्रीस्वरूप गोस्वामी आदि-महात्माओंने अपने-अपने ग्रन्थोंमें प्रकाश किया है, उन्हें देखकर उड़ीसादेशीय एवं गौड़ीय सन्त-महात्माओंके निकट श्रवणकर सुबुद्धिद्वारा विवेचन-पूर्वक कतिपय सन्तोंके बारम्बार अनुरोधसे 'मैं परमानन्द दास' (कविकर्णपुरका पर्वनाम) इस ग्रन्थकी रचना कर रहा हूँ ॥५॥—(कवि कर्णपुर द्वारा रचित गौरगणोद्देशदीपिका—वामदेव मिश्र द्वारा चतुर्थ संस्करण, १९२९ बंगालमें बरहमपुर राधारमण्यंत्रसे प्रकाशित, रामनारायण विद्यारत्न द्वारा अनुदित)

परिचय देकर उसकी भूमि प्रस्तुत कर ली गई। क्यों-कि ऐसा नहीं करनेसे मंजूषाको प्राचीन ग्रन्थ कैसे प्रमाणित किया जा सकता था। यह 'गौड़ीय-वैष्णव-साहित्य' ४६२ चैतन्याब्दमें मुद्रित हुआ है। अचिन्त्य-भेदाभेदवाद ४६४ गौराब्दमें तथा चैतन्यमतमंजूषा ४६६ चैतन्याब्दमें प्रमाणित हुए हैं। अतएव ये सब ग्रन्थ समसामयिक हैं और इनके लेखकोंने परस्पर एक दूसरेकी प्रामाणिक स्वीकार कर एक दूसरेके ग्रन्थोंसे प्रमाण आदि उद्धार किया है।

'श्रीगौड़ीय वैष्णव-साहित्य' ग्रन्थके पृष्ठ १११ की १२ से लेकर १६ पंक्ति तक ४ पक्तियोंको यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

'इन्होंने (श्रीनाथ चक्रवर्त्तनि) प्रति अध्यायके प्रति श्लोककी व्याख्या नहीं की है; केवल जिन-जिन स्थानोंमें श्रीकृष्णकी उत्कर्षताका व्याघात सा लगा है, उन्हीं स्थलोंमें ही उन्होंने श्रीकृष्णकी उत्कर्षताका स्थापन करनेके लिये जोर दिया है। किन्तु दुःखका विषय है कि 'उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः' (श्रीमद्भागवत १०।१८।२४)—इस श्लोकार्द्धकी व्याख्यामें उन्होंने लिखा है—'इत्यत्र श्रीकृष्णस्य पराजयान् श्रीदामवहनेऽनौचित्याच्च भगवान् कृष्णः स्तोककृष्ण इत्यर्थः, यह पाठ चैतन्यमतका विरोधी है।

'श्रीगौड़ीय वैष्णव-साहित्य' ४६२ चैतन्याब्दमें मुद्रित हुआ है जिसमें हरिदास दासने चैतन्यमतमंजूषा के सम्बन्धमें उपर्युक्त मन्तव्य लिखा है। किन्तु ४६६ चैतन्याब्दमें मंजूषाकी रचनाके समय वे उसमें श्रीमद्भागवतके १०।१८।२४ श्लोककी टीका देना बिल्कुल ही भूल गये हैं। किसी नये विषयको विराट रूप देनेमें मस्तिष्कको ठीक रखना संभव नहीं; कुछ भूल-भ्रान्ति रह ही जाती है। यदि ऐसा न हो तो लोगोंकी जाली कार्यवाहियाँ और धोखेबाजियाँ कैसी पकड़ी जाती? दुःखका विषय है, भागवतके—'उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः' (श्रीमद्भागवत १०।१८।२४)—श्लोककी टीका—जिसका उल्लेख उन्होंने ४६२ चैतन्याब्दमें मुद्रित 'श्रीगौड़ीय-वैष्णव-

साहित्य' में किया है, उन्हींके द्वारा (हरिदास दासके द्वारा) ४६६ चैतन्याब्दमें प्रकाशित चैतन्यमतमंजूषामें नहीं है। यही नहीं, इसमें १८वें अध्यायके किसी भी श्लोककी टीका नहीं है। इस प्रकार इसमें विविध विषयताओंकी विद्यमानता हेतु यह प्रमाणित होता है कि श्रीनाथ चक्रवर्त्तिका नाम देकर पड़यंत्रकारियोंने स्वयं ही इस ग्रन्थकी रचनाकी है। वास्तवमें यह ग्रन्थ किसी प्राचीन आचार्य द्वारा रचित नहीं है।

श्रीचैतन्यमतमंजूषामें श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तिका श्लोक

इस टीकाके सम्बन्धमें एक बात और निवेदन कर मैं अपना चक्रव्य संशेरमें समाप्त करता हूँ। हरिदास बाबूने 'श्रीचैतन्यमतमंजूषा' की टीका रचना करनेका सूत्र कहाँसे प्राप्त हुए?—इसका कुछ अनुसंधान करना आवश्यक है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्तिकाकुरने श्रीचैतन्य महाप्रभुके मतके सम्बन्धमें एक अत्यन्त प्रसिद्ध श्लोककी रचना की है, जिसे वैष्णव समाजका प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति जानता है। इस श्लोकको नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

आराध्यो भगवान् ब्रजेश-तनयस्तद्वाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूर्वर्गेण या कल्पिता ।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्य-महाप्रभोर्मन्त्रिदं तत्रादरो नः परः ॥

दास बाबूने इस श्लोकका अवलम्बन करके ही मंजूषाकी रचनाकी है। तथा इस टीकाके मंगलाचरणमें उन्होंने इस श्लोकका कुछ पाठ बदल कर दिया है। उनकेद्वारा सुराया गया (कुछ पाठ बदल कर लिया गया) श्लोक नीचे पाद टीकामें ॐ ज्योत्का-स्यो दिया जा

ॐ आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूर्वर्गेण या कल्पिता ।
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महा
नित्यं गौरमहाप्रभो मन्तनतस्तददरो नः परः ॥

मोटे अक्षरोंमें दिये गये अंश बदले हुए हैं। बाकी समस्त श्लोक विश्वनाथ चक्रवर्त्तिकाकुरका है।

रहा है। संभव है दासजी इसकी कैफियत यह देंगे कि वह श्लोक श्रीनाथ चक्रवर्तीका है, विश्वनाथ चक्रवर्तीने ही उसको कुछ अदल-बदल कर अपने नामसे प्रचारित किया है। किन्तु उन्होंने तो इस श्लोकको किसी पूर्व आचार्य द्वारा रचित नहीं कहा है। अतः उनकी ऐसी युक्ति पण्डित-मण्डलीमें उपेक्षणीय होगी। जैसा भी हो उन्होंने अपने स्व-रचित ग्रन्थको वैष्णव समाजमें चालू करनेके लिये अतिशय

प्रयत्न किया है। वे स्वयं इस बातको जानते हैं कि यदि वे अपने नामसे इस प्रकारका कोई सहजिया ग्रन्थ लिखेंगे अथवा प्रकाशित करेंगे तो शुद्ध वैष्णव जन उसे कदापि ग्रहण न करेंगे। अतएव किसी प्राचीन आचार्यका नाम देकर ऐसे-ऐसे ग्रन्थोंको लिखने और प्रकाशित करनेसे सभीलोग उन ग्रन्थोंका आदर करेंगे और इस तरह उनके (पङ्क्यंत्रकारियोंके) सारे असत् उद्देश्य पूर्ण हो जायेंगे।

तीसरा सिद्धान्त

शिष्टाचार-विरोध

प्राचीन साहित्योंका अवलोकन करनेपर हम देख पाते हैं कि प्रत्येक धर्म-ग्रन्थोंमें सर्व-प्रथम मंगलाचरणरूप शिष्टाचार अवश्य होता है। संस्कृत-ग्रन्थोंकी बात तो दूर रहे बंगला और हिन्दी आदि धार्मिक ग्रन्थोंमें भी मङ्गलाचरण अवश्य रहता है। प्रत्येक शुभ कार्योंमें मङ्गलाचरणका होना अवश्य कर्त्तव्य है। श्रीचैतन्य-चरितामृतके रचयिता श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रीचैतन्यभागवतके रचयिता श्रीवृन्दावनदास ठाकुर आदि समस्त आचार्योंने ही मङ्गलाचरणमें अपने-अपने इष्टदेवको प्रणाम किया है, उनकी कृपाकी प्रार्थना की है अथवा उनका जयगान किया है। हाँ, कहीं कहीं गद्य लेखकों ने श्लोक या छन्दोंमें मङ्गलाचरण नहीं किया है, परन्तु अपने-अपने इष्टदेवके प्रति सबने सम्मान प्रदर्शन किया है।

परन्तु हमलोग सुबोध बाबूके 'अचिन्त्य भेदाभेद' ग्रन्थके प्रारंभमें शिष्टाचारका कोई गंध तक नहीं पाते। हाँ, ग्रन्थके प्रथम पृष्ठके ऊपरमें छोटे २ अक्षरोंमें 'श्रीश्रीगुरुगौराङ्गीजयतः' अवश्य लिखा हुआ है। तो क्या विद्याविनोद महाशयका यही मङ्गलाचरण है? उन्होंने इस वाक्यके द्वारा मङ्गलाचरण नहीं किया है—हमें यहाँ पर यही दिखलाना है।

'श्रीश्रीगुरुगौराङ्गी जयतः' का तात्पर्य

'श्रीश्रीगुरुगौराङ्गी जयतः' का अर्थ है—श्रीगुरु और गौराङ्ग नित्यकाल जय लाभ करते हैं अथवा श्रीगुरुदेव और गौराङ्गदेव जय लाभ करें—ऐसी प्रार्थना। सुन्दरानन्द महाशयने किस अर्थमें इसका व्यवहार किया है, उनके ग्रन्थसे यह समझ नहीं पड़ता। और मैं खूब जोर देकर यह कहनेके लिए बाध्य होता हूँ कि उक्त वाक्यके विरुद्ध आचरण करने के लिये ही उन्होंने अपने असत्सिद्धान्तपूर्ण ग्रन्थके प्रथम पृष्ठके ऊपरी भागमें उसे लिख रखा है। कपट दैत्य-दानव अथवा देव-विश्व-द्रोही असुरगण जिस प्रकार अपने अन्तरतमके गूड़ असत् उद्देश्योंको छिपाकर शिव आदि देवतओंको तपस्यासे प्रसन्न कर पीछे इन्हीं उपास्य देवताओंकी ही हत्या करनेका प्रयत्न करते हैं, उसी प्रकार विद्याविनोद महाशय उर्फ सुबोध साहा ने 'श्रीश्रीगुरुगौराङ्गी जयतः' वाक्यका व्यवहार किया है। उन्होंने ग्रन्थके रचयिताका नाम अर्थात् अपना नाम देकर जिस प्रकार असत् उद्देश्यका परिचय दिया है, ग्रन्थके प्रतिपाद्य विषयमें भी उन्होंने उसी प्रकार असत् उद्देश्यका परिचय दिया है। उन्होंने 'अचिन्त्य-भेदाभेद' सिद्धान्तको ध्वंस करने तथा 'अचिन्त्य अद्वैतवाद' स्थापन करनेके उद्देश्यसे ही अपने ग्रन्थका नाम 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' रखा है। उनके अपना नाम व्यवहार करनेमें छद्मवेश

और कृत्रिमता लक्ष्य करता हूँ, उनके ग्रन्थके नाममें छद्मनाम और कृत्रिमता लक्ष्य करता हूँ, उनके सिद्धांत स्थापनमें छद्मभाव और कृत्रिमता लक्ष्य करता हूँ, यहाँ तक कि उनके संघके लोगोंमें छद्मवेश और कृत्रिमता लक्ष्य करता हूँ ।

अब मैं पूछना चाहता हूँ कि सुबोध साहाके गुरु कौन हैं ? वे किसका जयगान कर रहे हैं ? क्या उन्होंने इनके सम्बन्धमें कोई अभिज्ञता प्राप्त की है ? यदि प्राप्ति की है तो किससे प्राप्ति की है ? क्या हमलोग इनका परिचय जान सकते हैं ? क्या उन्होंने किसीसे दीक्षा ली है ? क्या उन्हें दिव्यज्ञान लाभ हो चुका है ? अथवा उसे लाभ करनेके लिए उन्होंने कोई उपाय किया है ? क्या उनके गुरुदेवका परिचय मिल सकता है ? श्रीगुरुदेवका नाम उल्लेख करते समय श्रीहरिभक्ति-विलासमें क्या विधान है ? क्या वे इसकी जानकारी रखते हैं ? उस विधानके अनुसार किसीका नाम उल्लिखित होने पर भी हमलोग समझ

जाते कि साहा बाबूके गुरुदेव 'अमुक' महाजन हैं । आधुनिक राम, श्याम, यदु, मधु आदि नामोंके साथ एक पंक्तिमें श्रीगुरुदेवका नाम उल्लेख होने पर गुरुदेव सबके बराबर हो पड़ते हैं—क्या वे इसे जानते नहीं ? क्या उन्होंने शास्त्रीय शिष्टाचारकी शिक्षा नहीं पायी है ? यदि इतनी भी शिक्षा नहीं पायी है तो, गंभीर विषयोंके ग्रन्थ लिखनेकी भण्डामी न करनी ही उचित थी । असुर और दैत्यगण बहुत कुछ किया करते हैं—किन्तु हम उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं । पूतना की तरह मातृ-स्थानीया होकर भी कृष्णको विष मिश्रित स्तन पान करना अत्यन्त घृणित कार्य है—इस विषयमें वैष्णवोंमें दो मत नहीं हैं । असुरगण ही पूतनाकी मातृगति देखकर आनन्द अनुभवकर गर्व प्रकाश करते हैं शुद्ध सारस्वतगण तो इसे आसुरिक गति मानकर उपेक्षा करते हैं । किंतु सहजियागण इसीसे मुग्ध होकर पूतनाकी सेवामें नियुक्त हो पड़ते हैं । (क्रमशः)

जैवधर्म

ग्यारहवाँ अध्याय

नित्यधर्म और पौत्तलिकता

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ३, संख्या २, पृष्ठ ४६ से आगे]

भागीरथीके पश्चिम तटपर कुलिया पहाड़पुर श्रीनवद्वीपके अन्तर्गत कोलद्वीपका एक प्रसिद्ध जनपथ है । श्रीमन्महाप्रभुजीके समय उसी गाँवमें श्रीमाधवदास चट्टोपाध्याय (नामान्तर छकौड़ी चट्टोपाध्याय) नामक एक वैष्णव रहते थे । श्रीवंशीवदनान्द ठाकुर इन्हींके पुत्र थे । श्रीचैतन्य महाप्रभुजीकी कृपासे वंशीवदनान्दजीमें विशेष प्रभु-

ताका आविर्भाव हुआ था । सभी लोग उनको कृष्णकी वंशीका अवतार मानकर उन्हें वंशीवदनान्द प्रभु ही कहते । श्रीविष्णुप्रिया माताके वे बड़े ही कृपापात्र थे । श्रीप्रियाजीके अप्रकट होनेके बाद इन्होंने श्रीप्रियाजी द्वारा सेवित श्रीमूर्तिको श्रीधाम मायापुरसे कुलिया पहाड़पुरमें लाया था । तबसे कुछ दिनों तक उन श्रीमूर्तिकी सेवा उनके वंशधर ही किया करते थे ।

किन्तु जब ये लोग श्रीजाह्नवामाताकी कृपा पाकर कुलिया पहाड़पुरसे श्रीपाट बाघनापाड़ा चले गये, तब मालखवासी सेवाधितोंने श्रीमूर्तिको कुलिया में ही रख कर सेवा करना आरम्भ किया।

प्राचीन नवद्वीपके दूसरे पारमें कुलिया गाँव है। कुलियामें चिनाडाङ्गा आदि अनेक प्रसिद्ध पक्लियाँ थीं। चिनाडाङ्गामें एक भक्त बणिक थे। उन्होंने कुलिया पहाड़पुरके मंदिरमें एक बार एक पारमार्थिक महोत्सव किया था। उस उत्सवमें बहुतसे ब्राह्मण-पण्डितों और सोलह-कोस नवद्वीपके अन्तर्गत समस्त वैष्णवोंको निमंत्रण दिया गया था। महोत्सवके दिन चारों ओरसे वैष्णवगण पधारे। श्रीनृसिंहपल्लीसे श्रीअनन्तदास आदि, श्रीमायापुरसे गोराचाँददास बाबाजी आदि, श्रीविल्व पुष्करणिसे श्रीनारायणदास बाबाजी प्रभृति श्रीमोदद्रुमके प्रसिद्ध नरहरिदास, श्रीगोद्रुमसे श्रीपरमहंस बाबाजी और श्रीवैष्णवदास तथा श्रीसमुद्रगढ़से श्रीशचीनन्दन दास आदि वैष्णवजन पधारने लगे। सबके ललाट पर उर्द्धपुंङ्ख तिलक, गलेमें तुलसीकी माला और समस्त अङ्गोंपर श्रीगौर नित्यानन्दकी मुद्रा (छाप) शोभा पा रही है। सबके हाथोंमें श्रीहरिनामकी माला है। कोई-कोई जोर-जोरसे 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥'—इस महामंत्रका गान कर रहे हैं। कोई-कोई मृदङ्ग और करतालके साथ संकीर्त्तन करते-करते आ रहे हैं। कोई-कोई 'श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द। श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासुदेव भक्तवृन्द ॥'—कीर्त्तन करते हुए नाचते-नाचते चले आ रहे हैं। अनेकोंकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है। किसी-किसीके अङ्ग पुलकित हैं। कोई-कोई बड़े ही कातर होकर क्रन्दन करते-करते कह रहे हैं—'हा गौरकिशोर! तुम्हारे नवद्वीपकी नित्यलीलाका दर्शन कब होगा!' कोई-कोई वैष्णवजन मृदङ्ग आदि वाद्योंके साथ 'नाम' गान करते-करते चले आ रहे हैं। कुलियाकी सुन्दरियाँ वैष्णवोंके परमोच्च भाव दर्शन कर अपने भाग्यकी प्रशंसा कर रही हैं। इस प्रकार

चलते-चलते जब वैष्णववृन्द श्रीमन्महाप्रभुके नाट्य मन्दिरमें उपस्थित हुए तो, भक्तबणिक अपने गलेमें बस्त्र लगाकर वैष्णवोंके चरणोंमें गिर कर तरह-तरह से अपनी दीनता प्रकाश करने लगे। वैष्णवजनोंके नाट्य-मन्दिरमें बैठ जाने पर मंदिरके सेवाधितोंने उनके गलेमें भगवान्की प्रसादी माला पहनाया। उसके बाद श्रीचैतन्यमंगलका गान होने लगा। श्रीचैतन्यदेव की अमृतमयी लीलाओंका श्रवण कर वैष्णवोंके नाना प्रकारके सार्विक बिकार होने लगे। जिस समय ये लोग इन प्रकार प्रेमानन्दमें विभोर हो रहे थे, एक द्वारपालने अधिकारियोंको सूचना दी कि सातसईका परगनाके प्रधान मौलवी साहेब दलबलके साथ मंडपके बाहर आकर बैठे हैं। वे वैष्णव-पण्डितोंके साथ कुछ बात-चीत करना चाहते हैं। अधिकारियोंने समागत पण्डित बाबाजी मण्डलीमें मौलवी साहेबके आगमन और उनकी अभिलाषाकी बात कही। ऐसा सुनते ही वैष्णव-मण्डलीमें रस-भङ्ग हो जानेके कारण कुछ विषाद सा छा गया।

'मौलवी साहेबका अभिप्राय क्या है?'—मध्य-द्वीपके कृष्णदास बाबाजीने अधिकारियोंसे पूछा।

'मौलवी साहेब पण्डित वैष्णवोंके साथ पारमार्थिक विषयमें बातचीत करना चाहते हैं। मौलवी साहेब मुसलमानोंमें एक अद्वितीय पण्डित हैं तथा दूसरे धर्मोंके प्रति उनके हृदयमें इर्षा-द्वेषकी तनिक भी भावना नहीं है। दिल्लीके सम्राटके दरबारमें इनका बड़ा सम्मान है। हमारी प्रार्थना है कि दो चार पण्डित वैष्णव उनके साथ शास्त्रार्थ करें, क्योंकि इसमें पवित्र वैष्णव धर्मकी जय होनेकी संभावना है।'—मंदिरके अधिकारियोंने बड़े ही नम्रतासे उत्तर दिया।

वैष्णव धर्मका प्रचार हो सकता है—सुन कर कुछ वैष्णवोंके मनमें मौलवी साहेबसे बात चीत करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। अंतमें सबने मिलकर स्थिर किया कि—मायापुरके गोराचाँद दास पण्डित बाबाजी, गोद्रुमके वैष्णवदास बाबाजी, जहनु नगरके प्रेमदास बाबाजी और चम्पाहटके कलिपावनदास बाबाजी—ये लोग मौलवी साहेबके साथ बात-चीत करें और बाकी सभी

श्रीचैतन्य-मङ्गल-गीत समाप्त होनेपर वहाँ जाँय । परामर्श हो जाने पर उक्त चारों बाबाजी 'जय नित्यानन्द' की ध्वनि देकर मौलवी साहेबके पास चले ।

मन्दिरके बाहर एक प्रशस्त मण्डप है । पास ही एक बहुत बड़ा पीपलका पेड़ है । इसीकी घनी और शीतल छायामें मौलवी साहेब अपने दलके साथ बैठे हैं । वैष्णवोंको आते देखकर वे सभी लोग उठ खड़े हुए और उनकी अभ्यर्थना कर सम्मानके साथ बैठायी । वैष्णवगण सबको कृष्णका दाज जानकर मौलवियोंके हृदयमें विराजमान वासुदेवको दण्डवत् कर एक पृथक् आसन पर बैठ गये । एक अपूर्व शोभा हुई । एक ओर श्वेत दाढ़ियोंसे युक्त पचास मुसलमान पण्डित सज-धज कर बैठे हैं । उनके पीछे कुछ सुसज्जित घोड़े बँधे हुए हैं । दूसरी ओर दिव्य-दर्शनधारी चार वैष्णव विनीत भावसे बैठे हुए हैं । इनके पीछे बहुतसे हिन्दू अत्यन्त असुक होकर बैठे हैं और बहुतसे और भी बैठते चले जा रहे हैं ।

पण्डित गोराचौदने पहले ही पूछा—'महोदयगण ! आपलोगोंने हम अकिंचनोंको क्यों बुलाया है ?'

मौलवी बदरुद्दीन साहेबने विनयके साथ उत्तर दिया—'आप हमारा सलाम ग्रहण करें । हमलोग आपलोगोंसे कुछ प्रश्न करना चाहते हैं ?'

पण्डित गोराचौदने कहा—'हमलोग क्या जानते हैं जो आपके पाण्डित्यपूर्ण प्रश्नोंका उत्तर देंगे ?'

बदरुद्दीन साहेबने कुछ आगे बढ़कर कहा—'हिन्दू-समाजमें प्राचीन कालसे देव-देवियोंकी पूजा चली आ रही है । हम 'कुरान शरीफ' में देखते हैं कि 'अल्ला दो नहीं—एक हैं । वे निराकार हैं । उनकी प्रतिमा पूजनेसे अपराध होता है । मुझे इस विषयमें संदेह है तथा इस संदेहको दूर करनेके लिए अनेक ब्राह्मण-पण्डितोंसे जिज्ञासा भी की है । वे कहते हैं—'अल्ला निराकार है, परन्तु निराकार वस्तुकी चिन्ता असंभव है, इसलिए अल्लाके एक आकारकी कल्पनाकर पूजा करनी

होती है' । परन्तु इस बातसे हमें संतोष नहीं होता । क्योंकि कल्पित आकार शैतान द्वारा निर्मित होता है जिसे बुत कहते हैं । ऐसी बुत-पूजा नितान्त निषिद्ध है । इससे अल्लाको सन्तुष्ट करना तो दूर रहे, उलटे दंडका भागी बनना पड़ता है । हमने सुना है, आप लोगोंके आदि प्रचारक श्रीचैतन्यदेवने हिन्दू-धर्मको निर्दोष बनाया है । फिर भी इनके सम्प्रदायमें 'बुत-परस्त' अर्थात् भूत-पूजाकी व्यवस्था दीख पड़ती है । हम लोग जानना चाहते हैं कि शास्त्र-विचारमें इतना निपुण होनेपर भी आप लोग भूत-पूजाका परित्याग क्यों नहीं करते ?'

मौलवी साहेबका प्रश्न सुनकर पण्डित-वैष्णवजन मन-ही-मन हँसने लगे । फिर परस्पर परामर्शकर पण्डित गोराचौदको मौलवी साहेबके प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये कहा । पण्डित गोराचौदजी 'जैसी आज्ञा' कह कर प्रश्नोंका उत्तर देना प्रारम्भ किया—

'आप लोग जिनको अल्ला कहते हैं, हम उनको भगवान् कहते हैं । परमेश्वर एक ही हैं । कुरानमें तथा पुराणोंमें देश और भाषाके भेदसे परमेश्वरके अनेक नाम हैं । विचार यह है कि—जो नाम परमेश्वरके समस्त भावोंको व्यक्त करता है, वह विशेष रूपमें आदरणीय है । इसीलिए हमलोग 'अल्ला', 'ब्रह्म', 'परमात्मा'—इन नामोंसे 'भगवान्' नामके प्रति अधिक श्रद्धा रखते हैं । जिससे बड़ा और कुछ भी नहीं है, उस पदार्थका नाम अल्ला है । अत्यन्त बृहत् भावको ही हम परम भाव नहीं मानते । जिस भावमें सबसे अधिक चमत्कारिता है, मधुरता है; वही भाव अधिक आदरणीय है । अत्यन्त बृहत् कहनेसे एक प्रकारकी चमत्कारिता तो होती है, किन्तु उसके विपरीत भाव—अत्यन्त 'सूक्ष्म भाव' में भी एक प्रकारकी चमत्कारिता है । अतएव 'अल्ला' नाम-द्वारा चमत्कारिताकी सीमाका बोध नहीं होता अर्थात् 'अल्ला' में बृहत्त्व तो है; किन्तु सूक्ष्मत्व नहीं । किन्तु 'भगवान्'—इस शब्दसे मानव-चिन्ता

में जितनी प्रकारकी चमत्कारिताएँ हैं, उन सबका बोध होता है।

समग्र 'ऐश्वर्य' अर्थात् वृहत्ता और सूक्ष्मताकी सीमा भगवान्‌का पहला लक्षण है। सर्व-शक्तिमत्ता भगवान्‌का दूसरा लक्षण है। मानव बुद्धिके परेके व्यापार अचिन्त्य शक्तिके अधीन होते हैं। भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्ति द्वारा युगपत् साकार और निराकार दोनों हैं। वे साकार नहीं हो सकते—ऐसा माननेसे उनकी अचिन्त्यशक्तिको अस्वीकार करना होता है। उसी शक्तिद्वारा अपने भक्तोंके निकट भगवान् नित्य-लीलामूर्तिमय हैं। 'अल्ला', अथवा 'ब्रह्म', या 'परमात्मा' केवल निराकार होनेके कारण विशेष चमत्कारितासे रहित हैं। (तीसरा लक्षण) भगवान् सर्वदा मंगलमय और 'यश-पूर्ण' हैं। अतएव उनकी लीला अमृतमयी है। (चौथा लक्षण) भगवान् 'सौन्दर्य-पूर्ण' हैं। समस्त जीवगण अपने अप्राकृत नेत्रोंसे उनको अतीव सुन्दर पुरुषके रूपमें दर्शन करते हैं। (पाँचवाँ लक्षण) भगवान् 'अशेष-ज्ञान' अर्थात् विशुद्ध, पूर्ण, चित् स्वरूप जज्ञातीत वस्तु हैं। उनका चित्-स्वरूप ही उनकी मूर्ति है। उनकी वह मूर्ति 'बुत' या भूतोंसे परे होती है। (छठवाँ लक्षण) भगवान् सबके स्वामी (कर्त्ता) होकर भी स्वतन्त्र और निर्लेप हैं—ये ही छः लक्षण भगवान्‌में लक्षित होते हैं।

भगवान्‌के दो प्रकाश हैं अर्थात् ऐश्वर्यप्रकाश और माधुर्य प्रकाश। माधुर्यप्रकाश ही जीवोंके परम बन्धु हैं। ये ही हमारे हृदयनाथ 'कृष्ण' या 'चैतन्य' हैं। भगवान्‌की कल्पित मूर्ति पूजाको व्युत्-परस्त या भूत पूजा कहनेसे हम लोगोंके मतके विरुद्ध नहीं होता। भगवान्‌के नित्य विग्रहकी (जो सम्पूर्ण चिन्मय होता है) पूजा करना वैष्णवोंका धर्म है। इस लिए वैष्णवोंकी विग्रह-पूजा बुत-परस्त नहीं होती। किसी पुस्तकमें बुतपरस्तका निषेध होनेसे ही वह

निषिद्ध नहीं हो सकती। जो व्यक्ति पूजा करता है, उसके हृदयकी निष्ठाके ऊपर ही सब कुछ निर्भर करता है। उसका हृदय भूत-पूजासे जितना ही परे होता है, वह उतने ही शुद्धरूपमें विग्रहकी पूजा करता है। आप मौलवी हैं, परम पण्डित हैं; आपका हृदय भूतातीत हो सकता है, किन्तु आपके जो सब अपण्डित चेले हैं, क्या उनका हृदय भूत-चिन्तासे रहित हो गया है? जितनी दूर तक भूत-चिन्ता है, वे उतनी ही दूर तक भूत-पूजा किया करते हैं। मुख से निराकार तो कहते हैं, किन्तु हृदय भूत-चिन्तासे भरा है। शुद्ध-विग्रह-पूजा सामाजिक होनी कठिन है। वह केवल अधिकारीके अनुसार व्यक्तिगत चिन्त है। अर्थात् जो भूत-चिन्तासे ऊपर उठ गये हैं, वे ही शुद्धरूपमें विग्रहकी सेवा-पूजा कर सकते हैं। मैं आपसे विशेष अनुरोध करूँगा कि आप इस विषय पर गौरसे विचार कर देखेंगे।

मौलवी साहेब—'मैंने खूब गौरसे विवेचन कर देखा है कि आप लोगोंने 'भगवान्'—शब्दमें जिन छः चमत्कारिताओंको संयुक्त किया है, कुरान-शरीफ में 'अल्ला' शब्दमें भी वही चमत्कारिताएँ बतलायी गयी हैं। 'अल्ला'—शब्दका अर्थ लेकर तर्क-वितर्क करनेकी आवश्यकता नहीं, अल्ला ही भगवान् हैं।'

गोराचाँद—'अच्छी बात है, यदि ऐसा ही हो, तो आपने परम वस्तुका सौन्दर्य और ऐश्वर्य स्वीकार किया। अतएव इस जड़ जगत्‌से पृथक् चिन्तनमें उनका सुन्दर स्वरूप स्वीकृत हुआ। यही हमलोगोंके श्रीविग्रह हैं।'

मौलवी—'परम वस्तुके चित्-स्वरूप-श्रीविग्रहकी बात हमारे कुरानमें भी लिखी गई है'—अतएव हम-लोग उसे माननेके लिए बाध्य हैं। किन्तु उस चित्-स्वरूपकी कोई प्रतिमूर्ति तैयार करनेसे वह जड़-स्वरूप हो पड़ती है। इसीको हमलोग भूत (बुत) कहते हैं। भूतपूजा करनेसे परम वस्तुकी पूजा नहीं होती।—इस विषयमें अपना विचार व्यक्त कीजिये।'

(क्रमशः)